

श्रीमद् देवचन्द्र ग्रन्थमाला पुष्प — ३

श्रीमद् देवचन्द्र सज्जायमाला भाग—२

पंच भावनादि सज्जाय सार्थ

सम्पादक

अगरचंद्र नाहटा

प्रकाशक :—

भंवरलाल नाहटा

व्यवस्थापक—श्रीमद् देवचन्द्र ग्रन्थमाला

४ जगमोहन मल्लिक लेन,

कलकत्ता—७

युगप्रधान जयन्ती

आश्विनकृष्णा २ सं० २०२०

मूल्य०-७५ नये पैसे

श्रीमद् देवचन्द्र ग्रन्थमाला पृष्ठ — ३

श्रीमद् देवचन्द्र सज्जायमाला भाग—२

पंच भावनादि सज्जाय सार्थ
प्रीति

सम्पादक

अगरचंद नाहटा

प्रकाशक :—

भंवरलाल नाहटा

व्यवस्थापक—श्रीमद् देवचन्द्र ग्रन्थमाला

४ जगमोहन मल्लिक लेन,

कलकत्ता-७

युगप्रधान जयन्ता

आश्विनकृष्णा २ सं० २०२०

मूल्य०-७५ नये पैसे

पंचभावनादि सङ्काय के भावों को आत्मसात् करने वाले

स्वर्गीय श्री मनोहरलाल नाहटा

की

अमर

आत्मा को

सादर समर्पित

अनुक्रमणिका

१	पाँच भावना सञ्जाय सार्थ	१
१	श्रुत भावना	४
२	तप भावना	६
३	सत्त्व भावना	१३
४	एकत्व भावना	२१
५	तत्त्व भावना	२६
	भावना माहात्म्य	३०
	परिशिष्ट (क) बृहत्कल्प और पाँच भावनाएँ	३३
	(ख) पाँच अप्रशस्त भावनाएँ	३६
	(ग) तप भावनोक्त तपस्वर्या विविधा	३८
	(घ) तपस्वी मुनिधी की जीवनियाँ	
	१ वडण कुमार	४१
	२ खंदक मुनि	४३
	३ कुरुदत्त मुनि	४५
	४ मुनि मेतार्य	४६
	५ कीर्तिधर सुकोशल	४७
	६ मुनि गजसुकमाल	५०
	७ चक्रवर्ती सनत्कुमार	५३
	८ प्रत्येकबुद्ध मुनि करकण्डु	५४
	९ ,, नमि राजर्षि	५७
	१० ,, नगई	५८
	११ ,, दुम्मुही	५९

१२ मृगापुत्र	६०
१३ हरिकेशी	६१
१४ चिलातीपुत्र	६४
१५ अनाथी मुनि	६७
१६ भरत चक्रवर्ती	६९
१७ इलापुत्र	७०
१८ अमात्य तेलीपुत्र	७३
२ प्रभंजना सज्जाय [सार्थ]	७५
३ साधु भावना पद [सार्थ]	९०
४ साधु भावना सज्जाय [सार्थ]	९३
५ साधु समस्या दोषक	९८
६ पद संग्रह	
पंचेन्द्रिय विषय त्याग	९९
मेरे जीउ क्या मन में तुं चितइ	१००
मेरे पीयु क्युं न आप विचारउ	१००
पीउ भोराहो सांभलि मियु भोरा हो	१०१
आतम भाव रसो हो	१०१
७ ढंढण मुनि सज्जाय	१०२
८ समकित सज्जाय	१०५
९ गजसुकुमाल मुनि सज्जाय	१०५
१० ध्यानी निग्रन्य सज्जाय	१११

प्रवेशिका

महान तत्वज्ञ श्रीमद् देवचन्द्र जी की रचनाओं का श्वेताम्बर समाज में बहुत अच्छा प्रचार है। लगभग ५९ वर्ष पूर्व तपोगच्छीय योगनिष्ठ श्रीमद् कुट्टि-सागरसूरिजी का ध्यान उन समस्त रचनाओं को संगृहीत कर प्रकाशित करने की ओर गया और उनकी प्रेरणा से अध्यात्म ज्ञान प्रसारक मण्डल द्वारा श्रीमद् देवचन्द्र भाग १-२ के रूप में उनका प्रकाशन भी हो गया। यद्यपि अध्यात्म प्रेमी जनता ने उनको काफी अमनाया पर हिन्दी भाषान्तर के अभाव में उनका हिन्दी भाषी जनता में विशेष प्रचार नहीं सका। हमारी कोश से कुछ अज्ञातहस्त नए भी प्राप्त हुई और उनके प्रकाशन का प्रयत्न भी समय-समय पर किया जाता रहा है। श्रीमद् देवचन्द्र जी के आममसार का हिन्दी अनुवाद बहुत वर्ष पूर्व योगिराज श्री चिदानन्द जी महाराज ने किया था जिसे अमण्डलजी कोठारी ने अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला से प्रकाशित करवाया। यह ग्रन्थ तस्मिन् अंग्रेजी का सार ही है अतः इसका कुछ विवेचन के साथ हिन्दी रूपान्तर स्वर्गीय आनन्दसागर सूरिजी ने करके सैलाना से प्रकाशित करवाया। नयचक्रसार का हिन्दी रूपान्तर फलोदी से प्रकाशित हुआ है।

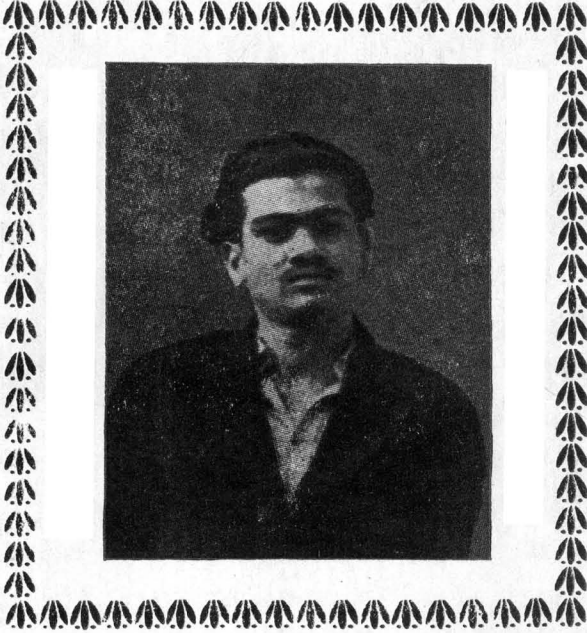
अध्यात्म और भक्ति रस प्रधान श्रीमद् की रचनाओं में से स्नात्र-पूजा और चौबीसी आदि का प्रचार सबसे अधिक रहा है। श्वेताम्बर समाज के प्रत्येक प्रत्येक मन्दिर में स्नात्र-पूजा प्रतिदिन बड़े ही भक्ति भाव से मढ़ाई जाती है इसका प्रथम हिन्दी अनुवाद श्री चन्दनमल जी नागोरी ने व दूसरा श्री उमरव-चन्द्र जी जरगड़ ने किया। श्री जरगड़ जी ने चौबीसी का भी संक्षिप्त हिन्दी विवेचन तैयार किया। ये तीनों हिन्दी अनुवाद श्रीजिनदत्तसूरि सेवासंघ, बम्बई से

प्रकाशित हो चुके हैं। हमारी कई वर्षों से इच्छा थी कि आपकी अन्य महत्वपूर्ण रचनाएँ भी हिन्दी अनुवाद सह प्रकाशित की जाय। इसलिये दो वर्ष पूर्व श्री नेमीचन्द्र जीन से बाँकानेर में अष्टप्रवचन माता, पंच भावना व प्रभंजना सञ्ज्ञाय का हिन्दी में भावार्थ लिखवाया गया जिनमें से अष्ट प्रवचन माता का सञ्ज्ञाय भावार्थसह अलग से प्रकाशित की जा रही है। प्रस्तुत ग्रन्थ में पंच भावना प्रभंजना, साधु भावना पद, साधु भावना सञ्ज्ञाय अर्थ सहित व अन्य गजसुकुमाल व ढंढण मुनि की सञ्ज्ञाय व कतिपय पद-सञ्ज्ञाय मूलरूप में प्रकाशित की जा रही है। पंच भावना की सञ्ज्ञाय बहुत ही महत्वपूर्ण है, सुप्त चितना को जाग्रत करने में इसकी तीसरी चौथी ढालें ती इन्जेक्सन से भी अधिक काम करती हैं। इस सञ्ज्ञाय में उल्लिखित तपस्वी एवं वैरागी मुनिजनों की जीवनियाँ भी आशा है पात्रकों की बहुत ही प्रेरणादायक सिद्ध होंगी। साधु भावना पद और साधु भावना सञ्ज्ञाय का बालाबबोध भी योगिराज ज्ञानसारजी रचित उपलब्ध हुआ था। उसके आधार से संक्षिप्त भावार्थ श्री केशरीचन्द्र जी भूपिया ने तय्यार कर दिया है। एतदर्थ हम उनके आभारी हैं।

श्रीमद् की अन्य कई रचनाओं के हिन्दी अनुवाद भी तय्यार करवाये गये हैं जिनमें से शान्त-सुवारस का भंबरो बाई कृत अनुवाद मुद्रित हो रहा है। अष्टाश्व गीता का हिन्दी भावार्थ श्री उमरावचन्द्रजी जरगड़ ने तय्यार किया है जिसे शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा। आशा है हिन्दी भाषा जनता हमारे इस प्रयास को अपनाकर पूर्ण सहयोग देगी।

अगरचन्द्र नाहटा

पंच भावनादि सज्जाय-सार्थ



(नाम और गुणानुरूप मनोहर)

मृत्युञ्जयी मनोहरलाल नाहटा

जन्म सं० १९६२

निधन सं० २०१४

मृत्युञ्जयी मनोहरलाल

इस असार संसार में लाखों व्यक्ति प्रतिदिन जन्म लेते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं पर मानव जन्म उन्हीं का सार्थक है जो अपना कल्याण करने के साथ-साथ दूसरों के लिए एक आदर्श उपस्थित कर जाते हैं। भाई मनोहरलाल नाहटा एक ऐसा ही-प्रतिभासम्पन्न, सदाचारी और सर्व-प्रिय नवयुवक था जिसने अपने अल्प-जीवन में अपने आत्मीय जनों एवं मिलने-जुलने वालों के हृदय में अपने सद्ब्यवहार से एक अमिट छाप छोड़ दी उसने "मरण समं नत्वि भयं" लोकोक्ति को मिथ्या प्रमाणित कर दिया। यमराज को भयानक गदा उसे क्लान्त न कर सकी और वह मृत्युञ्जयी बना।

मानव-जन्म की सार्थकता है -सम्यग्दर्शन की प्राप्तिमें। भाई मनोहर ने जड़ चेतन की भिन्नता ज्ञातकर वेह-ममत्व का परिहार किया और अपने सद्बिचारों द्वारा सबको प्रभावित कर-अमृत-तत्त्व प्राप्त किया। इस तरुण ने सद्बिचारशील, सौजन्यमूर्ति स्वर्गीय श्री तिलोकचन्द जी नाहटा के इकलौते पुत्र परलोकगत बालचन्द जी नाहटा के घर विक्रम सं १९६२ के भिती मिंगशर सुदी ५ को जन्म लिया। इसकी माता का नाम धापीबाई है। मनोहर अपने ४ वर्ष की ही आयु में पितृ-सुख से वंचित होकर भी अपने संस्कारी जीवन द्वारा सब का प्रेम-भाजन हुआ और मेट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। इसकी छोटी बहन मोहिनी जो संसार से विरक्त होकर आत्मोन्नति के मार्ग में आरूढ होने को उत्सुक थी अतः उसकी मातुश्री ने पूज्या आर्यावर्य श्री विचक्षणश्रीजी जैसी विदुषी एवं आत्मा-ध्विनी साध्वीश्रेष्ठा के चरणों में समर्पित कर निवृत्ति-स्थानुगामिनी बनाया।

मनोहर ने अपना अध्ययन पूरा करके व्यापार में प्रवेश किया और करीमगंज की दोही मुसाफिरी में व्यापार की सारी सूक्ष्मताओं में अभिज्ञता प्राप्त कर ली। वहाँ उसने अल्प समय में बंगला भाषा का ज्ञान प्राप्त किया और उसमें धारा प्रवाह से बातचीत करने लगा। उसका विनय व्यवहार अद्भुत था। बड़ों के चरणों को प्रतिदिन स्पर्श कर उनकी आज्ञानुसार आचरण करना उसका स्वभाव सिद्ध अभ्यास था।

सं० २०१३ के मित्ती वैशाख वदी ४ के दिन श्री फागुणचन्दजी पारख की पुत्री किरणदेवी के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ और १॥ वर्ष के पश्चात् अपनी पत्नी को सौभाग्य सुख से वंचित कर सं० २०१४ के मित्ती माघ वदी १० की रात्रि में कलकत्ता के नीलरतन सरकार-अस्पताल में वह स्वर्गगामी हुआ। केवल २२ वर्ष की आयु में इस भव्यात्माका जिस तरह से देहविलय हुआ उसका संक्षिप्त संस्मरण नीचे दिया जा रहा है।

मृत्यु के कुछ महीने पूर्व बीकानेर में अमय जैन-ग्रंथालय की पुस्तकों की एक पारसल छुड़ाने के लिए वह स्टेशन गया और वापिस लौटते समय रांचडी चौक में सार्ईकिल पर सवार होते हुए भी वहाँ एक कुत्ते ने मनोहर के पैर में काटलिया। चौक में रहने वालों में किसी को पता नहीं था कि कुत्ता पागल है। इसलिए उचित मल्हम-दवाई लगाने पर थोड़े समय में उसका पैर अच्छा हो गया। कुछ दिन पश्चात् उसके करीमगंज जाने की आवश्यकता हुई और रवाना हो गया

समय वदी २ रविवार का दिन था। मैं प्रातः काल गद्दी में आकर बैठे था। करीब ८ बजे सिलचर का टेलीफोन आया। उसमें इन्द्रचन्द्र बोधरा ने कहा, "कि मनोहर बीमार है - कसीमगंज से फोन आया है कि कल रातसे पानी देखकर

चमक उठता है। अतः यहां के डाक्टरों ने अविलम्ब उसे कलकत्ते भेजने की राय दी है। उसके मोटर द्वारा करीमगंज से आने पर सिलचर के डाक्टरों को दिखा कर हवाई अड्डे भेज रहा हूं। साथ में ब्रजरतन जी पारख रहेंगे। इसलिए आप अभी से पागल कुत्ते से कटे रोगी के चिकित्सक डाक्टर की खोज करें और चार बजे दमदम हवाई अड्डे पर उचित व्यवस्था करके तयार रहें।” यह संवाद पाकर मैं स्तब्ध रह गया क्योंकि इस रोग की असाध्यता मालूम हो गयी। उसी समय मैंने अपने मित्र श्रीशांतिमलजी मेहता के साथ जा कर डा० सुराणा से परामर्श लिया। उन्होंने मेंडिकल कालेज के ट्रोपिकल होस्पिटल के डा० वीरेन्द्र-कृष्ण वसु और डा० बनर्जी से मिलकर रोगी को देखने का समय निर्धारित कर लेने का परामर्श दिया। हम लोगों ने वहां जाकर उनकी खोज की। रविवार का दिन होने के कारण उन दोनों डाक्टरों में कोई भी उस समय उपस्थित नहीं था। अन्त में दफ्तर में डाक्टरों की एक सूची मिल गयी। जिससे उन डाक्टरों के घर का पता व टेलीफोन नम्बर मालूम किया और उनसे डा० सुराणा और उपरोक्त दोनों डाक्टरों से सम्पर्क स्थापित किया।

ठीक चार बजे सिलचर का प्लेन दमदम हवाई अड्डे पर पहुंचा और श्री ब्रजरतनजी पारख के साथ उतरते हुए मनोहर को लेकर हम ने उसे मोटर में बिठाया। उसने वहां जल पीने की इच्छा व्यक्त की और हमने सन्तरा खाने को कहा पर मुँह के पास ले जाते ही चौंक उठा। हम सीधे डा० सुराणा के यहां पहुंचे। उसका पानी पीने का आग्रह था अतः दो बार जल मंगाया गया और ने ज्यों ही ग्लास सामने की वह भड़क कर बेकाबू हो जाता था। आधी घंटा प्रतीक्षा करने पर डाक्टर साहब आये और पंखा खोलने पर एवं पानी सामने आते ही चौंक उठने के लक्षण देखकर हमें भविष्य निराशा-जनक बतलाया

तथा हमें गद्दी में ले जाने को कह कर आध घण्टा के भीतर ही स्पेशलिस्ट
 डाक्टर को लेकर पहुंचने का कहा। हम उसे गद्दी में लाए। आते ही भगवान
 और गुहदेव के चित्रों को नमस्कार कर सबको प्रणाम किया फिर भेरे गोडे पर
 मस्तक रखकर सोया। डाक्टर ने आते ही पंखा खोल, बत्ती जलाई तो वह चाँकने
 लगा। डाक्टर ने श्री कानमल जी सेठिया की गद्दी में जाकर मुझे बुलाया और
 कहा, "रोगी को हम किसी भी हालत में बचा नहीं सकते। साधारणतया ७२
 घंटे से अधिक इस हाइड्रोफोबिया का डेवलप होने के बाद कोई रोगी बच नहीं
 सकता। विश्व के विज्ञान की इस रोग के आगे पराजय है। गवर्नमेंट इसकी
 औषधि निर्माण के लिये कोटि कोटि रुपये व्यय कर सकती है पर अभी तक तो
 यह विश्व में रिकार्ड है कि इस रोग का कोई इलाज नहीं। हम आपसे ६६ परसेन्ट
 १ पोइन्ट निराशा-जनक कह सकते हैं। हमने कहा होश-हवास बात-चीत आदि
 सब ठोक है फिर ऐसी क्या बात है? उन्होंने कहा, "यह स्थिति तो अन्तिम
 स्वांस तक रहेगी। आप अविलम्ब अस्पताल में भरती कर दीजिए।" हम अपने
 प्रयत्न में न्यूनता नहीं रखेंगे पर इलाज बही होगा कि जब तक जिये सुख से
 जिये, शक्ति बनी रहे।! टेलीफोन करके तुरन्त ही एम्बुलेंस गाड़ी मंगा ली
 गयी और शाम को ६॥ बजे नीलरतन सरकार अस्पताल में भर्ती करा दिया।
 पास में उपचारिका रख दी एवं हम लोग मन्त्रतंत्रादि के उपचारों की भी चेष्टा करने
 लगे। रात १२-१२॥ बजे तक घूमते फिरते एक होमियोपैथ-डाक्टर ने हमें आशा
 बंधाई और दवा दी। हमने डाक्टरों से अनुमति मांगी, उन्होंने उस समय तो ना
 कहा पर दूसरे दिन हमारे आग्रह पर उन्होंने उपचार करने को सहर्ष स्वीकृति दे
 दी। हमने नियमानुसार होमियोपैथिक दवाई दी पर कोई विशेष लाभ न हुआ।
 सारे डाक्टर इन तरुण रोगी में दिलचस्पी लेते थे। लेडी डाक्टर और नर्स

आखों में आंसू लाकर परमात्मा से मनोहर के अच्छे हो जाने को प्रार्थना करती थी। मंगलवार की रात को ९ बजे उसने थोड़ा दूध लिया, दो एक कमला निम्बू की फांक भी खाई एवं थोड़ा पानी भी पिया। ७२ घंटे व्यतीत हो जाने से हमें आशा की किरण दिखाई दी। पर आयुष्य कर्म के अनुसार टूटी हुई डोर फिर संघ न सकी और उस आत्मा ने आयु की अवधि पूर्ण होते ही उस विनश्वर देह का त्याग कर दिया।

मनोहर जब तक जीवित रहा-असाधारण शान्ति और समता के साथ उसने अनन्त वेदना सही। उसके शब्दों में कभी भी दैन्य भाव नहीं आया और मोह ममता को त्याग कर केवल आत्मानन्द में लीन रहा। शारीरिक अवशता से कभी कोई ऐसी चेष्टा हो जाती तो वह तुरन्त कहता “भाई जी मेरी अज्ञानता वश ही कोई अनर्गल बात निकल जाय तो पता नहीं किन्तु मेरे मन में पूर्ण शान्ति है। यह शरीर नाशवान है। आत्मा अजर अमर अविनाशी है तो इस शरीर के लिए क्यों चिन्ता की जाय। जब मैं बीकानेर में कितानों की पार्सल लेकर रांघडी चौक में आया तो एक कुत्ते ने मुझे काट खाया। डा० हर्ष ने कहा कि यदि पागल कुत्ता नहीं था तो हाइड्रोफोबिया के कोर्स की आवश्यकता नहीं। दो एक पेनीसिलिन के इंजेक्शनों से घाव सूख गया और मैं निश्चिन्त हो गया, यदि उस समय उचित कोर्स पूरा कर लिया जाता तो यह दशा आज क्यों होती ! पर यह सब त्रिकल्पमात्र हैं। मैं इसके लिए किसी को दोषी नहीं ठहराता। मेरे बन्धे हुए कर्म मुझे ही भोगने पड़ेंगे”। मेरे द्वारा समभाव की अनुमोदना करने पर, मनोहर ने कहा “ज्ञानो वेदे धैर्य्य धी, अज्ञानी वेदे रोय”

उसने कहा ‘भाई जी, मेरी मां को बुलवा दीजिये। मेरे मन में दो ही इच्छाएँ हैं एक तो मां के चरणों में मस्तक टेक कर उसका मुंह देख सकूँ, दूसरी-गुरुदेव

श्री सहजानन्दजी के दर्शन करने की बड़ी तीव्र इच्छा है मैंने कहा भाई ! तुम्हारी मां को लेकर आने के लिए पूज्य श्री काकाजी को तार और फोन द्वारा कहा जा चुका है और वे कल पहुंच जावेंगे। मनोहर ने कहा भाईजी ! बाबाजी मेरी मां को कैसे लावेंगे। वह तो रेल में भी घबराती है प्लेन में तो आ नहीं सकेगी। यदि किसी भी तरह एक बार उसके दर्शन हो जाते तो अच्छा होता” मैं उसे आश्वासन देता रहा पर भावी प्रबल है, जब उसकी माता और उसकी पत्नी पहुंची तब तक उसकी नाशवान देह, भस्म के रूप में परिणत हो कर पतितपावनी गंगा के अजस्र प्रवाह में विलीन हो चुकी थी।

उसकी दूसरी प्रबल इच्छा गुरुदेव के दर्शनों की थी। उसने कहा भाई जी ! मुझे गुरुदेव के दर्शन कराइये। मैंने गुरुदेव का एक चित्र मनोहर को अस्पताल में दिया। उसने अनन्य भक्ति पूर्वक मस्तक के लगाया और मुझे गुरुदेव का प्रत्यक्ष दर्शन कराने के लिए आग्रह किया। मैंने कहां भाई तुम एक काम करना। तुम्हें आज रात को गुरुदेव के दर्शन अवश्य होंगे। उसने कहा कि मुझे मार्ग बताइये। मैंने कहा “अपने शरीर की सारी वेदना भूलकर-श्वासोच्छ्वास के साथ गुरुदेव का स्मरण करना और आत्मा के अविनाशीपन का सतत ध्यान रखना। पूर्ण व्याकुलता के साथ गुरुदेव का स्मरण करने से, वे तुम्हें अवश्य दर्शन देंगे एवं उस समय यदि तुम अपने अव्यवसायों को एकाग्र रख सके तो तुम्हें उनकी वाणी भी सुनाई देगी। उसने मेरे कथन को स्वीकार किया एवं मुझे कहा कि मैं आपक कथनानुसार ऐसा ही करूंगा। आप मेरी ओर से प्रभु शान्तिनाथ भगवान् चरण भेटें एवं स्नात्रपूजा करा दें। मैंने जब दूसरे दिन प्रभुचरण भेटने की बात कही तो उसने अनुमोदन करते हुए कहा कि कल फिर मेरे नाम से पूजा करें,

भाई जी ! मेरे मन में ऐसे भाव आते हैं कि मुझे भवभव में जैन-धर्म मिले, प्रभुकी पूजा-भक्ति करूं। मुझे आप लोगों जैसे बाबा, भाई आदि मिले हैं, मैं अपने को धन्य मानता हूँ। मुझे २२ वर्ष को तहण अवस्था में जाने की कोई चिन्ता नहीं है। मुझे इतना सन्तोष है कि मैंने अपने जीवन में किसी का बुरा नहीं किया। अपनी नजर खराब नहीं की और न कभी हाथ खराब किया। भाईजी ! मैंने तो कोई पाप नहीं किया फिर यह दशा क्यों ? मैंने कहा भाई ! सात कर्मों की प्रकृतियों का बन्ध तो सदैव होता ही रहता है पर आयुष्य-कर्म तो एक भव में एक ही बार भावी भव का बन्ध करता है अतः पूर्व जन्म के बंधे हुए आयुष्य बंध को न्यूनाधिक करने में तीर्थंकर चक्रवर्ती भी असमर्थ है तो फिर दूसरों की बात ही क्या ? यह शरीर तो नाशवाने है। एक वस्त्र जीर्ण हो जाने से फिर दूसरा वस्त्र पहनते हैं, इसी प्रकार यह चोला छोड़कर नयी देह धारण करनी होती है। इस विनाशी देह पर मोहन करके-आत्मभावना में लीन रहने से ही मृत्यु पर विजय प्राप्त की जासकती है। मनोहर ने कहा—आपका कथन यथार्थ है, मुझे मृत्यु से लेशमात्र भी भय नहीं। मैं अजर अमर अविनाशी हूँ, आप लोग कोई भी मेरे लिए चिन्ता न करें। देखिये ! मेरे सुसराजी सामने खड़े हैं, उनकी आंखों में आंसू न आने पावे।

फिर मनोहर से कहा:—“सुसराजी ! मैंने आयु थोड़ी पाई। आपकी पुत्रा से १॥ वर्ष का ही संबंध था। इस अवधि में मैंने जो कुछ अनुचित व्यवहार किया हो उसके लिए मन, वचन, काया से क्षमा-प्रार्थी हूँ।” भाईजी ! मेरी माँ को किसी प्रकार का कष्ट न हो। आप लोग इस बात का ख्याल रखें और संसार को प्रत्यक्ष अनित्यता देख कर यदि उसका दीक्षा का परिणाम हो जाय तो आप लोग उसे अवश्य ही संयम मार्ग की पथिक बनादें। मेरी स्त्री चाहे पिता ५

यहां रहे, चाहे दीक्षा ले अथवा मेरी मां के पास रहे, वह स्वतंत्र है। पर मेरी माँ दीक्षा ले तो मुझे संतोष होगा। मेरी बहन चन्द्रप्रभाश्री जी को चतुर्मास के हेतु बीकानेर अवश्य बुलावें। दूसरे दिन जब मैं अस्पताल गया तो वह “खामेमि सव्वे जीवा” तथा “खामिय खमाविय व चौदह जीव निकाय” आदि गाथायें बोल रहा था। मुझे देखते ही कहा, “भाई जी मेरे लिए आपही गुरुदेव हैं। जिन्होंने मुझे गुरुदेव का दर्शन करा दिया। आज मुझे रात में गुरुदेव के दर्शन हो गये। मैं धन्य हो गया। अब मुझे प्रत्यक्ष दर्शन कराइए ! मैंने कहा:— तुम्हारे ठीक होते ही तुम्हें गुरुदेव के दर्शन कराने के लिए क्षत्रियकुण्ड ले चलूंगा। उसने कहा यह तो दुराशा मात्र है। क्योंकि डाक्टर लोग अंग्रेजी व बंगला में बातें करते हैं, वह अविदित नहीं है। मैंने कहा भाई यदि बच गये तो गुरुदेव के दर्शन अवि-लम्ब करोगे अन्यथा भवान्तर में अवश्य दर्शन होंगे। उसने बंगला में निश्चयपूर्वक कहा—“निश्चयई आमि क्षत्रियकुण्ड जाबो एव गुरुदेवे चरण सेवाय थाकबो। मैंने कहा भाई ! तुम इस प्रकार के उत्तम मन के परिणाम को रखते हो, अतः तुम धन्य हो। ज्ञान ध्यान की बातें बना लेना सहज है पर समय पड़ने पर असमाधि को त्याग कर आत्म-स्थिरता में, समभाव में स्थिर रहने में कोई विरला ही समर्थ हो सकता है। तुमने तो वही स्थिति प्राप्त की है जो अत्यन्त दुर्लभ है। “आज रात में तुम फिर एकाग्र ध्यान से गुरुदेव को स्मरण करना, तुम्हें गुरुदेव के प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होंगे और वाणी भी सुन पाओगे। उसने मेरी बात स्वीकार की आगे अपने को समभाव में लीन रखकर वेदना को सहन करने लगा।

इस रोग के रोगी दौड़ना, भागना, दूसरों को काट खाना आदि पागलपन विशेष करने लग जाते हैं, पर मनोहर न अपना विवेक इतना जागृत रखा कि डाक्टरों ने जो उसके हाथ पैरों में बाँध रखे थे, खोल दिये। नर्स जब

प्रेमपूर्वक उसके सिरहाने खड़ी हुई मस्तक सहला रही थी तो उसने 'कहा—
 "नर्स तोमार हाथ तो आमार माएर हाथेर मोतोन अत्यन्त प्रिय लागे ।"

उसने सब लोगों को याद करके क्षमतक्षामना की । जब कोई उसके पास जाता तो वह उसके साथ धर्म की ही बातें करता। मंगलवार की रात में करीब ११ बजकर २० मिनट पर नर्स से कहा- 'नर्स ! आमार दादा के डेके दाओ, आमाके नवकार मंत्र दिबे ।' इतना कहने के कुछ ही क्षण बाद उसकी आत्मा स्वर्ग को ओर चली गई । हम लोगों ने प्रातःकाल दुःखी हृदय से उसकी अन्त्येष्टि क्रिया की । दूसरे दिन उसकी माँ और काकाजी शुभैराजजी कलकत्ता पहुंचे, पर उन्हें उसका मुख देखना नहीं बदा था, उसकी माँ अस्पताल जाने के लिए आग्रह करने लगी, पुत्र का मुख देखने के लिए हठ करने लगी । मैंने जब उसको अन्तिम भावना और पण्डित-मरण की बातें बतलाई तो उनका चित्त कुछ ठिकाने आया । दो दिन बाद जब काकाजी अगरचन्दजी का पत्र आया और उनमें उल्लिखित श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज की अमरवाणी पढ़ सुनाई तब मनोहर की माँ का चित्त स्थिर हुआ ।

“परिजन मरतो देखिने, शोक करे मन मूढ !

अवसर वारो आपणो, सहु जन नी ए रूढ़”

(पंच भावना सज्जाय)

मैंने पूज्य गुरुदेव श्रीसहजानन्दजी को एवं श्रीविचक्षणश्रीजी महाराज को उसके समाधि-मरण के दुःखद समाचार लिखे । श्रीगुरुदेव ने प्रत्युत्तर में लिखा:-मनोहर नी उत्तम भावना हती तेथी उत्तम गति थई छै, फिकर कयी जेवुंनथी ” । तमारो सद्भावनाए काम कयुं छै । आवी मददज कामनी छै, बाकी तो जीव अनादिनां फुटारामा फटकातो आवे जाय छै, तेमांथी जेओ समाधि-मरण

योम्य थई देह त्यागे ते जीव धन्य छे ” ॐ शान्ति”

क्षत्रियकुंड से श्री मुखलाल भाई का कार्ड (मिती माघ सुदी ४) आया जिसमें उन्होंने लिखा था:- “आपने भाई मनोहरलालजी के बारे में लिखा सो जान कर ऐसा मालूम होता है कि उनकी भावना उत्तम थी। उसका प्रत्यक्ष साक्षात् पूज्यश्री को मालूम हुआ। वे पत्र पढ़ते थे। उसीसमय एक बिजली का पलकारा जैसा हुआ और गुरुदेव ने पास में बैठे हुए हम लोगों से कहा देखो एक रोशनी का पलकारा हुआ। जब हम लोगों ने ऐसा ख्याल किया कि वह आत्मा देवयोनि से यहां आकर पूज्यश्री के दर्शन करके चली गई। पूज्यश्रीने कहा कि भावना सुन्दर थी।

जब मनोहर का दुखद समाचार अजमेर स्थित श्रीचन्द्रप्रभाश्रीजी को मिले तो वे इस विकल्प में चिन्तित थे कि न मालूम उसके मृत्यु के समय कैसे परिणाम रहे होंगे ! पर जब मेरा पत्र मिला तो उन्हें भी मनोहर के समाधि-मरण से सन्तोष हुआ। मिती माघ सुदी ३ के पत्र में श्रीचन्द्रप्रभाश्रीजी ने लिखा:—

“मनोहरलालजी के समाचार जब से सुने थे, तब से हृदय में गहरी चोट लगी थी पर आपके पत्र न मरहम-पट्टी का काम किया। युवावस्था के अन्दर इस प्रकार की उत्तम भावनाओं का होना धन्यवाद के योग्य है। आश्चर्य होता है कि उन्होंने एकदम ही जड़ और चेतन का भान किस तरह पाया। आपके पत्र के पूर्व येही विचार मस्तिष्क में घूमते रहे कि न मालूम किस प्रकार से देह छूटी होगी ? क्या परिणाम रहे होंगे ? बस इसी चीज का दुख होता था। पर आपके पत्र ने सब विचारों को दबा कर आत्मा को भी सन्तोष दिया। मरने के दुख से ज्यादा सुख, उनके ऐसे उच्च परिणामों से हुआ।”

दूसरे रविवार को रात्रि ७॥ बजे जैन भवन के स्वाध्याय सभा में उसके समाधि-मरण और आत्म परिणामों के गुणानुवाद करने के पश्चात् कुछ समय मौन रह कर स्वर्गीय आत्मा की शान्तिकामना की गई।

भँवरलाल नाहटा

—:—

ॐ

॥ भावना भवनाशिनी ॥

अध्यात्मरसिक श्री देवचन्द्रजी कृत
साधु की पांच भावनायें

दोहा=

स्वस्ति सीमंधर परम, धर्मध्यान सुख ठाम ।

स्याद्वाद परिणामधर, प्रणमूं चेतन-राम ।१।

भावार्थ=किसी भी शुभकार्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण करना आवश्यक है। मंगल दो प्रकार के माने जाते हैं, -द्रव्य और भाव। द्रव्य-मंगल की लौकिक-कार्यों में प्रधानता रहती है, तथा लोकोत्तर कामों में भाव-मंगल काम में लिया जाता है। सारे भाव मंगलों में प्रथम मंगल-अरिहंत है, अतः ग्रन्थकर्ता इस विधि का पालन कर रहे हैं।

धर्मध्यान रूपी सुख के स्थान, स्याद्वाद के परिणामों को धारनेवाले, आत्म स्वरूप में रमण करने वाले, महा विदेह क्षेत्र में विचरने वाले कल्याणकारी श्री सीमंधर स्वामी को प्रणाम करता हूँ। अरिहंतव सिद्धस्वरूपी चेतन्य आत्मा को भी प्रकारान्तर से नमस्कार है ।१।

महावीर जिनवर नमी, भद्रबाहु सखीश ।

वंदी श्री जिनभद्र गणी, श्री क्षेमेन्द्र मुनीश ॥२॥

+मंगलाणं च सर्वेसिं पढमं ह्वइ मंगलं । (नमस्कार सूत्र)

भावार्थ—अभी भरतक्षेत्र में अंतिम तीर्थङ्कर श्री महावीर स्वामी का शासन चल रहा है, अतः श्री वीरप्रभु को नमस्कार करता हूँ । तदनन्तर श्री तीर्थङ्कर देवों के प्रतिनिधि “अजिणा- जिण संकासा” कहे जाने वाले आचार्यों को नमस्कार करना उचित ही है । दोहे के दूसरे चरण में श्री भद्रबाहु स्वामी को, तीसरे पाद में श्री जिनमद्र-गणी (क्षमाश्रमण) को तथा चौथे चरण में श्रीक्षेमेन्द्रसूरि को नमस्कार किया है ॥२॥

प्रस्तुत पांच भावना के वर्णन का आधार बृहत् कल्प सूत्र है उसके रचयिता भद्रबाहु स्वामी है और टीकाकार क्षेमेन्द्रसूरि हैं अतः उनको प्रारम्भ में नमस्कार किया गया है ।

सद्गुरु शासन-देव नमी, बृहत्कल्प अनुसार ।

शुद्ध भावना साधुनी, भाविश पंच प्रकार ॥३॥

भावार्थ=उपर्युक्त नाम निर्देश करने के बाद ग्रन्थकर्ता सोचते हैं, कि अब नाम की बजाय ऐसा शब्द लिखा जाय, ताकि सारे योग्य व्यक्तियों को नमन हो सके, इसलिए सद्गुरु-देव (सद्=सच्चे गुरु-गौरवशाली) को नमस्कार किया है चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस शासन देव होते हैं, अतः जैन शासन को रक्षा में सचेष्ट रहने वाले शासनदेवों को नमस्कार किया है । देव-गुरु-तथा शासनदेव को नमस्कार करके कवि कहते हैं, कि मैं :श्री बृहत्कल्पसूत्र के अनुसार साधु की पांच प्रचलित भावनाओं का वर्णन करूंगा—भावूंगा ॥३॥

इन्द्री-योग-कषाय ने, जीपे मुनि निःशंक ।

इण जीते कुध्यान जय, जाये चित्त तरंग ॥४॥

भावार्थ=निर्मयता के साथ मुनि अपने आंतरिक रिपुओं को जीते । पांच इन्द्रियाँ

चार कषाय, तीन योग रूप इन बारह (कर्म बंध के स्वरूप शत्रुओं को जीतने से अपव्ययान पर विजय पाता है और चित्त की तरंगों (विकल्प) शान्त व शमित होती है ॥४॥

प्रथम भावना श्रुत तणी, बीजी तप तिय सत्त्व ।

तुरिय एकता भावना, पंचम भाव सुतत्त्व ॥५॥

भावार्थ=पांच भावनाओं के नाम ये हैं १ श्रुत भावना २ तपभावना ३ सत्त्व भावना-४ एकत्व-भावना और ५ तत्त्व भावना ॥५॥

श्रुत-भावना मन थिर करे, टाले भवनो खेद ।

तप भावना काया दमे, वामे वेद उमेद ॥६॥

भावार्थ=कौनसी भावना से कौनसा लाभ होता है ! यह इस पद्य में कहा गया है । पहली श्रुत-भावना से मुनि अपने मन को स्थिर करे तथा संसार से उत्पन्न खेद को टाले । दूसरी तप भावना द्वारा बाह्य-दृष्टि से काया का दमन करे । और आंतरिक भावों से वेद (स्त्री-पुं-नपुंसक) की उमेद को छोड़े (अर्थात् वेदोदय को उपशमावे) ॥६॥

सत्त्व भावना निर्भय दशा, निज लघुता इकभाव ॥

तत्त्व भावना आत्म गुण, सिद्ध साधना दाव ॥७॥

भावार्थ=तीसरी सत्त्व-भावना से निर्भय-दशा को प्राप्त करे । चौथी एकत्व भावना से अपनी लघुता (कर्मों वपापों का हल्कापन) को पावे तथा पाँचवीं भावना तत्त्व से आत्म गुणों की साधना द्वारा सिद्ध बनने का दाव लगावे ॥७॥

:—:—:

ढलल—डहली श्रुत डलवना की

लुक सुवरूड वलकलरु अतड हलत डणीरु—ए देशी

श्रुत अडुडलस करु डुनलवर सडल रु, अतलकलर सहु टललल
हीण अधलक अकुर डत उकुकुरु रु, शडुड अरथ संडललल।श्रुत१।

डलवलरुथ—डु डलवनाडु डुनलडुडुके ललल डतललरुई नरुई हूँ इससे कुडुई डह न सडडुके, कल श्रलवकुके ललल इनकल कुडल उडडुडुग हूँ ? डरनुतु डह एक ऐसु डस्तु हूँ, कल सडल डुर सडु डेके ललल उडडुडुगु डु, हूँ, और रहुगु। डलवनाडुके डुरडलन अधलकलरु डुनल हुते हूँ अतः डुनलडुडु कु सुडुडुडुधलत करके कहुल गडल हूँ कल हे डुनलवर ! सडल डुनल कल अडुडुडुडु करु। डहलं डर 'सडल' शडुडु हडुँ सुकलत करतल हूँ, कल नलरु-शुतर कल श्रुतलडुडुडुडु डड से डु डड डुडुडुडु कल श्रुतधलरु (डुनलतल) डनल सकतल हूँ। कहुल डु हूँ; कल "हडुडुशल एक शलुक डलड करु, एक न कर सकु तु अलधल करु, अलधल न कर सकु तु कुडुशरुई करु और वल डु न कर सकु तु कतुरुडुडुश कल अषुडडुडुडु अरुथलतु एक अकुर तु अवसुडु डलड करु।"

डुनलडुडुडुडु करते सडुडु डह डु अवसुडुडु हूँ, कल डुनल के सलरु अतलकलर (डुडुध) टलले डलरुडु। डु डलठ डलस रूड डुँ हूँ, उससे हीन (कडु) अकुर तथल अधलक अकुर डुललनल अलडल कुडुडुडु अतलकलर (डुडुध) हूँ। डलर डु डलठ डुलल डलडु, उसकल शडुडु (वुडलकरण) और अरुथ डु संडललु (धुडलन डुँ लु)। डुडुडुडुडु कल तुते डलली रडनल कलुडुडुडुडुडुडुडु नरुई हु सकतु ॥ १ ॥

सूक्ष्म अर्थ अगोचर दृष्टि थी रे, रूपी रूप विहीन ।

जेह अतीत अनागत वर्तता रे, जाणे ज्ञानी लीन । २ श्रु० ।

भावार्थ—अतीत, अनागत (भविष्य) और वर्तमान काल के जो रूपी (मूर्त) और अरूपी (अमूर्त) सूक्ष्म-अर्थ (रहस्य) हैं, ज्ञानी पुरुष उन्हें अपनी अतीन्द्रिय (आत्म) दृष्टि (ज्ञान-चक्षु) से जानता है ॥२॥

नित्य अनित्य एक अनेकता रे, सदसद् भाव स्वरूप ।

छः ए भाव एक द्रव्य परिणम्या रे, एक समय मां अनूप । ३ श्रु० ।

भावार्थ—यह त्रिकाल सत्य है, कि एक ही समय (सूक्ष्म से-सूक्ष्म-काल) में, एक ही पदार्थ में निज-निज स्वरूप से छहों भाव परिणमते हैं । वे छः भाव ये हैं—१ नित्यता, २—अनित्यता, ३—एकता, ४—अनेकता, ५—सत् और ६—असत् । श्रुत ज्ञान द्वारा द्रव्यों के इन ६ भावों को विचारे ॥ ३ ॥

उत्सर्ग अपवाद पदे करी रे, जाणे सहु श्रुत चाल ।

वचन विरोध निवारे युक्ति थी रे, थापे दूषण टाल । ४ श्रु० ।

भावार्थ...श्रुत की सारी चाल (गति) को उत्सर्ग (निश्चय) और अपवाद (व्यवहार मार्ग) से जाने, कि कौन-सा वचन उत्सर्ग का है, और कौन-सा कथन व्यवहार आश्रयी है । आगम-वचनों में भी यदि कहीं-कहीं वचन-विरोध दृष्टिगत हो, तो उसे युक्तियों द्वारा हटाकर निर्दोष वचन की स्थापना करे ॥ ४ ॥

द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक धरे रे, नय-गम-भंग अनेक ।

नय सामान्य विशेष बेहुँ ग्रहे रे, लोकालोक विवेक । ५ श्रुत ।

भावार्थ-किसी शास्त्रीय पद की स्थापनाकरते समय द्रव्यार्थिक नय (द्रव्यके गुणोंकी अपेक्षादृष्टि) और पर्यायाधिक नय (पर्याय-अवस्था की अपेक्षा दृष्टि) को ध्यान में रखे । नय-गम और भङ्ग अनेक अर्थात् अनन्त हैं, उनका यथासाध्य लक्ष्य रखें पर उनका पार नहीं । अतः कम-से-कम सामान्य और विशेष इन दोनों नयों को लेकर लोका-लोक का विवेचन करे ॥ ५ ॥

नन्दि सूत्रे उपगारी कश्यो रे, वलि अशुच्चा ठाम ।

द्रव्य श्रुत ने वांद्यो गणधरे रे, भगवई अंगे नाम । ६ श्रुत ।

भावार्थ पांच ज्ञानों में से उपगार करनेवाला एक श्रुतज्ञान ही है । बाकी के चार ज्ञान तो स्थापना मात्र हैं, ऐसा श्री नन्दीसूत्र में कहा है । तथा श्री भगवती सूत्र के शतक ६ उद्देश ३१ में “असोच्चा केवली” के अधिकार में भी इसका प्रमाण है । इसी सूत्र के प्रारम्भ में स्वयं श्री गणधरदेव के द्रव्य श्रुत को नमस्कार करने का पाठ भी है...“नमो सुयदेवयाए” । अतः श्रुताभ्यास का महत्व स्वतः सिद्ध है ॥ ६ ॥

श्रुत अभ्यासे जिनपद पामिये रे, छठे अंगे साख ।

श्रुत नाणी केवलनाणी समोरे, पन्नवणिज्जे भाख । ७ श्रुत ।

भावार्थ...श्री ज्ञाता सूत्र के अन्दर तीर्थङ्कर पद प्राप्ति के वीह स्थानों का वर्णन है । उनमें श्रुत अभ्यास से भी तीर्थङ्कर गोत्र कर्म का बन्ध होना बतलाया है । श्री पन्नवणा सूत्र में तो श्रुतज्ञानी को केवलज्ञानी के समान कहा है । केवलज्ञान से जाने हुए पदार्थों की प्ररूपणा तो श्रुतज्ञान के आधार से ही होती है । केवलज्ञानी और श्रुतज्ञानी की प्ररूपणा में कोई अन्तर नहीं है । तथा जो पदार्थ श्रुतज्ञान के अविषय हैं, उनकी प्ररूपणा न तो किसी केवलज्ञानी ने की है, न कोई कर सकता है ॥ ७ ॥

श्रुत भावना

श्रुतधारी आराधक सर्व ते रे, जाणे अर्थ स्वभाव ।

निज आतम परमातम सम ग्रहे रे, ध्यावे ते नय दाव । ८ श्रुत ।

भावार्थ...श्रुतधारी को सर्व आराधक कहा है, तथा श्रुतविहीन चारित्र्य को देश (अंश)...आराधक । क्योंकि ज्ञानी पदार्थों के स्वभाव को पिछानता है, तथा संग्रह नय की दृष्टि से अपनी आत्मा को परमात्मा के इमान समझता हुआ ध्यान करता है । ॥ ८ ॥

संयम दर्शन ते ज्ञाने बधे रे, ध्याने शिव साधत !

भव स्वरूप चउगति नो लखे रे, तेणे संसार तजंत । ९ श्रुत ।

भावार्थ...दर्शन और चारित्र्य की मूलभित्ति ज्ञान है । कहा भी है--- 'नाणेण विना न हुंति चरण गुणा', अर्थात् ज्ञान के बिना चारित्र्य गुण नहीं होता । ज्ञान से ही दर्शन और चारित्र्य की शुद्धि तथा वृद्धि होती है । ज्ञानी पुरुष ध्यान द्वारा मोक्ष की साधना करता है । ज्ञान से ही चारों गतियों का स्वरूप जाना जाता है । जानने के पश्चात् संसार का त्याग करने का काम भी ज्ञानी पुरुषों का है, "ज्ञानस्यफलं विरतिः ॥ ९ ॥

इन्द्रिय सुख चंचल जाणी तजे रे, नव-नव अर्थ तरंग ।

जिम-जिम पामे तिम मन उल्लसे रे, वसे न चित्तअनंग । १० श्रुत ।

भावार्थ...श्रुताभ्यासी मुनि इन्द्रिय-सुखों को चञ्चल जान कर छोड़ता है । तथा ज्यों-ज्यों शास्त्रों के नये-नये अर्थों की लहरियों को प्राप्त होता है, त्यों त्यों उसका मन उल्लास से भर जाता है । ऐसे मुनि के मन में अनङ्ग (काम वासना) नहीं बस सकता । वह तो शास्त्राभ्यास व चिंतन में ही लीन रहता है । १०

काल असंख्याता ना भव लखे रे, उपदेशक पण तेह ।

परभव साथी आलंबन खरो रे, चरण विना शिव गेह । ११ श्रुत ।

भावार्थ... ज्ञानी पुरुष असंख्यात-काल के पिछले जन्मों को देख सकता है । श्रुत के आधार पर उन्हें बतला भी देता है । अतः परभव में जाते समय खरा साथी श्रुतज्ञान है । सभी को श्रुत का ही सहारा है । श्रुत का बल हो, तो द्रव्य चारित्र के बिना भी मोक्ष पाया जा सकता है । यहां यह ध्यान रहे कि भाव-चारित्र के बिना तो किसी की भी मुक्ति नहीं हुआ करती । ॥ ११ ॥

पंचमकाले श्रुतबल पण घट्यो रे, तो पण ए आधार ।

‘देवचन्द्र’ जिनमत नो तच्च ए रे, श्रुत सूं धरज्यो प्यार १२ श्रुत

भावार्थ... यद्यपि पञ्चमकाल (कलियुग) में श्रुत की शक्ति बड़ी क्षीण हो गयी है । फिर भी मुमुक्षुओं को आधार तो श्रुत ज्ञान का ही है । जिनेश्वरदेवके मर्मका मही सार है कि, ज्ञानसे प्यार धरना अर्थात् ज्ञान पाने की रुचि रखना । श्री देवचन्द्रजी महाराज यों कहते हुए पहली श्रुत-भावना को सम्पूर्ण करते हैं १२

.....

ढाल ? तप भावना की

अनुमति दीधो माए रोवती... ए देसी...

१ रयणावली २ कनकावली, ३ मुक्तावली ४ गुणरयण
वज्जमध्य ने ६ज्वमध्य ए,तप करि ने हो जीपोरिपु मयण ।१।
भवियण तप गुण आदरो, तप तेजे रे छीजे सहु कर्म ।
विषय विकार सहु टले,मन गंजे रे भंजे भव भर्म । भवि० २ ।

भावार्थ...श्रुत भावना के पश्चात् तप भावना का स्थान है। क्योंकि
ज्ञानी पुरुषों को भी पुरातन कर्मों को तोड़ने के लिए तप का सहारा लेना पड़ता
है। हे भव्यज्जतो ! तपस्या के गुण अपनाओ ! इस तपके तेज से सारे कर्म छीज
जाते हैं और विषय विकार टल जाते हैं। मन वश में आ जाता है। जन्म-मरण
का भ्रम दूर हट जाता है। आगमों में तप करने की अनेक विधियाँ बतलायी हुई
हैं, उनमें से रत्नावली, कनकावली, मुक्तावली, गुणरत्न सम्बत्सर, वज्जमध्य,ज्वमध्य,
जैसी कठिन तपस्याओं से अन्तरङ्ग शत्रु मदन (काम वासना) को अवश्य जीतो।
शरीर एवं इन्द्रियों की कमजोरी से वासनाएँ भी निर्बल बन जाती हैं। १-२।

जोगे जय इन्द्रिय जय तदा, तप जाणो हो कर्म सूडण सार ।
उवहाणे योग वुहा करी, शिव साधे रे सूधा अणगार । ३भ० ।

भावार्थ...तपस्या से योगों (मन-वचन-काया) तथा इन्द्रियों पर विजय
पायी जाती है, इसलिए कर्मों को तोड़ने में तप सारभूत है। उपधान तथा योगोद्-
बन्धन करके सरल व शुद्धाचारी मुनि मोक्ष को साधे...!! ३ ॥

जिम-जिम प्रतिज्ञा दृढ थको, वैरागीयो तपसी मुनिराय।

तिम-तिम अशुभ-दल छीजवे, रवितेजे रे जेमशीतविलाय।४॥भ०

भावार्थ...तपस्या भी वैराग्य एगं दृढ मनोबल के बिना नहीं हो सकती; देहासक्ति का त्याग तो तप के लिये अत्यावश्यक है। इसलिये कहा गया है कि वैरागी और तपस्वी मुनि ज्यों-ज्यों अपनी की हुई (व्रत व तप की) प्रतिज्ञा पर दृढ होते जाते हैं, कष्ट उठा कर भी दृढ निश्चय पर डटे रहते हैं; त्यों-त्यों अशुभ कर्मों का समूह छोड़ता जाता है। जैसे कि शरदियों में ज्यों-ज्यों सूर्य का प्रकाश फँलता है त्यों-त्यों शीत का विनाश होता जाता है। ४ ॥

जे भिक्षु पडिमा आदरे, आसन अकंप सुधीर।

अतिलीन समता भाव मां, तृण परे हो जाणंत शरीर ॥५॥भ०

भावार्थ...जो मुनि भिक्षु-पडिमा (साधु के लिए बारह प्रकार की विशेष प्रतिज्ञाएँ) आदरता है, वह धैर्यवान मुनि अपने आसन को अकम्प (अचल) रखता है अर्थात् उनसर्ग आने पर भी डोलता नहीं। तथा समता में इतना लीन हो जाता है कि अपने शरीर को भी तृण तुल्य समझता है अर्थात् शरीर की भी परवाह या सार सम्भाल नहीं करता ॥ ५ ॥

जिण साहु तप तलवार थी, सूडयो छै हो अरि मोह गयंद

तिण साधु नो हूं दास छूं, नित्य वंदुं रेतसपय अरविन्द।६॥भ०

भावार्थ=जिस साधु ने तप रूपी तलवार लेकर शत्रु के समान मोहरूपी हाथी को मार डाला है, उस साधु का मैं दास हूँ। और उसके चरणकमलों को नित्य बंदना करता हूँ—६

टिप्पणी... १ से ६ तप का विवरण परिशिष्ट में देखो।

आचार स्रूयगडांग मां, तिम कहयो हो भगवई अंग।

उत्तराध्ययन गुणतीशमें, तप संगे हो सहु कर्म नो भंग ।७।भ०

भावार्थ=आचारांग, स्रूयगडांग, भगवती, तथा उत्तराध्ययनसूत्र के उनतीसवें अध्यायन में कहा है कि, तपस्या से सारे कर्मों का नाश हो जाता है ॥७॥

ते दुविध दुक्कर तप तपे, भव पास आश विरक्त ।

धन्यसाधमुनि, १ ढंढण समा, २ ऋषिखंधकहो ३ तीलग ४ कुरुदत्त ।८।भ०

भावार्थ=वे मुनि बाह्य आभ्यन्तर इन दोनों प्रकार का दुक्कर कठोर तप करते हैं और सांसारिक बंधन स्वरूप किसी वस्तु के प्रति अभिलाषा नहीं रखते, सांसारिक आशाओं से विरक्त रहते हैं ऐसे निष्काम भावों से तपस्या करने वाले १ ढंढण २ खंधक, ३ तीलग, तथा ४ कुरुदत्त जैसे मुनियों *को धन्य है ॥८॥

निज आतम कंचन भणी, तप अग्नि करी शोधंत ।

नव नवी लब्धि-बल छतै, उपसर्ग हो ते सहंत महंत ।९।भ०

भावार्थ=अपनी आत्मा रूपी सोने को तपस्या रूपी आग द्वारा तपाकर कर्मों-का मैल निकाल डाले, ऐसे उग्रतपस्वियों को नई नई लब्धियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है किन्तु भिद्धियों के होते हुए भी उनका उपयोग वे, स्वकष्ट-निवारण के लिए नहीं करते हैं अपितु कष्टों को समता से सहन करते रहते हैं — ९

धन्य ! तेह जे धन गृह तजी, तन स्नेह नो करी छेह ।

निःसंग वनवासे वसे, तपधारी हो ते अभिग्रह गेह ।१०।भ०

*१-२-४ इनकी जीवनियां परिशिष्ट में पढ़िये । तीलय का घृतांत प्राप्त नहीं हो सका ।

भावार्थ=धन्य है उन मुनियों को, जिन्होंने धन-संपत्ति-और घर छोड़कर साधु जीवन स्वीकारा है। उनमें भी तपस्वी मुनियों की तो और भी विशेषता है कि उनमें तो शरीर के स्नेह का भी अंत कर डाला है। उन तपस्वियों में भी विशेष प्रकार के अभिग्रह (त्याग) धारी मुनि तो निःसंग (राग रहित) बनकर वनवासी ही हो गये हैं। अतः वे विशेष-विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। अर्थात् एक-एक से बढ़कर सराहनयी हैं। १०।

धन्य ! तेह गच्छ-गुफा तजो, जिनकल्प भाव अफंद ।

परिहार विशुद्धि तप तपे, ते वंदे हो 'देवचन्द्र' मुनीन्द्र । ११। भ०

भावार्थ=इस दूसरी ढाल के अंतिम पद्य में जो धन्यवाद दिया है, उसके अवि-कारी बहुत कम हुआ करते हैं। इस युग में तो ऐसे मुनियों की नास्ति सी है। जिन्होंने गच्छरूपी गुफा को छोड़कर जिनकल्प १ को अपनाया है तथा निश्छल भाव से परिहारविशुद्धि नामक २ तपस्या करते हैं, उन्हें धन्यवाद के साथ श्री देवचन्द्रजी वंदना करते हैं।—११

---:---:

१ षष्ठ ऋषभ नाराच संहतन वाला, नववै पूर्व की आचार नामक तीसरी वस्तु का जानकार, अभिग्रह सहित तीसरे प्रहर में अल्प आहार और विहार वाला, मुनि जिनकल्पी होता है। विशेष विवरण के लिए व्यवहारसूत्र के माष्य की गाथा १३७६ से १४१७ तक पढिये...।

२ नव साधुओं का समूह मिलकर परिहारविशुद्धि तप करता है।

ढाल तीसरी —सत्त्व भावना की

(हवे राणी पदभावती — ए देशी...)

रे जीव ! साहस आदरो, मत थाओ दीन ।

सुख दुःख संपद आपदा, पूरव कर्म आधीन । रे जीव १ ।

भावार्थ=अब तीसरी सत्त्व-भावना का वर्णन चलता है । कहीं कहीं ऐसा हुआ करता है कि महान तपस्वी मुनियों को भी सत्त्व-हीन भावना मटका देती है । इसलिये मुनियों को ही क्या, प्राणीमात्रको सत्त्व भावना की आवश्यकता है । रे जीव ! साहस रखो । दीन मत बनो । तेरे जीवन में होने वाले ये सुख, दुःख, संपदा, आपदा (विपत्ति) पूर्व-कर्मों के आधीन हैं । तुम हिम्मत मत हारो । यह समझो कि यह सारा सुख व दुख अपने ही किए हुये कर्मों का फल है । और इन्हें समभाव से भोग लेना ही कल्याण का मार्ग है ॥ १ ॥

क्रोधादिक वसे रण समे, सखा दुःख अनेक ।

ते जो समता मां सहे-तो खरो विवेक-रे जीव । रे २ ।

भावार्थ=क्रोध, अहंकार, लोभ, प्रतिशोध आदि की भावनाओं से तो तैने युद्ध क्षेत्र में अनेक कष्ट सहे हैं । परन्तु उदयमें आये हुए कर्मों के फल स्वरूप कष्ट यदि तूं समभाव से सह लेता हैं तो तुम्हारा विवेक सच्चा-खरा कहा या गिना जायगा ॥२॥

सर्व अनित्य अशाश्वतो, जे दीसे एह ।

तन घन सयण सगा सह, तिणसुं श्यो नेह । रे ३ ।

भावार्थ=इस जगत में जो भी दृश्यमान पदार्थ हैं, वे सभी पौद्गलिक हैं क्योंकि १ द्रव्यों में रूपी द्रव्य वह एक ही है ये सारे दृश्यमान पदार्थ अनित्य और अशाश्वत हैं। इसलिए घन-तन-स्वजन-सगों आदि अनित्य वस्तुओं पर स्नेह कैसा ? अर्थात् इन सब से स्नेह करना उचित नहीं है ॥३॥

जिम बालक बेलू तणा, घर करीय रमंत ।

तेह छते अथवा ढहे, निज-निज गृह जंत । रे ४ ।

भावार्थ=जैसे बच्चे गीली रेत के घर बनाकर खेलते हैं। उन घरों के प्रति बालकों के मन में क्षणिक आसक्ति ही होती है क्योंकि उन घरों के ढह जाने पर वा उनके रहने पर भी उन्हें वैसे ही छोड़कर बालक अपने-अपने घर चले जाते हैं। इसी तरह संसारी लोग भी अपने बनाये हुए घरों को छोड़कर परलोक को चला बेंते हैं। अतः इनको अपना मानकर आसक्त होना उचित नहीं ॥४॥

पंथी जेम सराय मां, नदी नाव नी रीति ।

तिम ए परियण तो मिल्यो, तिण थी शी प्रीति । रे ५ ।

भावार्थ=जैसे घर्मशाला में पथिक (राहगीर) मिलते हैं और बिछुर जाते हैं। अथवा नदी को पार करने के लिये जहां नौकायें लगी हुई हों, वहां उन नावों पर साय में बैठकर पार उतरने वाले मुसाफिर अपने-अपने रास्ते से चले जाते हैं। वैसे ही इस संसार में स्वजन संबन्धियों का मेला मिला है, इनसे प्रीति कैसी ? ये सारे अपना-अपना आयुष्य अथवा स्वार्थ पूरा होने पर उठ जायेंगे, बिछुर जायेंगे ॥५॥

ज्यां स्वारथ त्यां सह्य ए सगा, विण स्वारथ दूर ।

पर काजे पापे भले तूं किम होये शूर । ६ रे ।

भावार्थ—रे जीव ! जिनको तू सगा समझता है, वे स्वार्थ पर्यन्त सगे हैं ।
बिना स्वार्थ दूर हो जायेंगे । सोच तो सही तू औरों के लिये पाप कार्य करने में
शूरवीर क्यों हो रहा है ?—॥ ६ ॥

तज बाहिर मेलावडो, मिलियो बहुवार ।

बे पूरव मिलियो नहीं, तिणसूं धर प्यार । ७ ।

भावार्थ—रे जीव ! यह बाहिर का मेला (मिलाप-५.ला५) छोड़ दे । ऐसा मेला
जो तुझे पहले भी बहुत बार मिल चुका है । जो मेला तुझे कभी नहीं मिला, ऐसे
अपूर्व आंतरिक (आत्मस्वरूप) मेले से प्रेम कर ! महापुरुषों, सत्पुरुषों व आत्मिक
सद्गुणोंसे प्रेम कर ! उनकी ही प्राप्ति दुर्लभ है, अबतक मिल न सकनेसे अपूर्व है ।

चक्री हरि बल प्रतिहरी, तस विभव अमान ।

ते पण काले संहरया, तुज धन श्ये मान । ८ ।

भावार्थ—रे जीव ! तेरे पास वैभव है कितना श्रेष्ठ ? इस तुच्छ वैभव पर
भी तू इतना अभिमान करता है ? जरा सा सोच ! कि, चक्रवर्ती, वासुदेव,
बलदेव, प्रतिवासुदेव आदि महापुरुषों का वैभव अमित होते हुए भी कालने सारा
हरण कर लिया अर्थात् नामो-निशान मिटा डाला । तब तेरी हस्ती ही क्या
है ? उनकी तुलना में तेरा धन है कितना सा ? ॥ ८ ॥

हा हा हुँतो तू फिरै, परियण नी चिंत ।

नरक पड्यां कहै तुजने, कोण करे निचिंत । ९ ।

भावार्थ—बड़ा खेद है कि तू परिजनों की चिंता करता हुआ इश्वर-उपर चक्कर काट रहा है और दिन रात पापकर रहा है। परन्तु उन पापोंके फल स्वरूप तेरी दुर्गति होगी, तब तुझे निश्चित करनेवाला (छुड़ानेवाला) कौन है? अर्थात् कोई नहीं। परिजनों की तो तू इतनी चिंता करता है पर अपने आत्म कल्याण की चिन्ता नहीं करता, यही सबसे बड़े दुख की बात है ॥ ९ ॥

रोगादिक दुःख ऊपने, मन अरति म धरेव ।

पूरव कृत निज कर्म नो; ए अनुभव देव । रे १० ।

भावार्थ=रे जीव ! रोग-शोक आदि दुःख उत्पन्न होने पर तू मन में अरति (अशान्ति) मत धारण कर। यह सोच कि वह तब तेरे ही किये हुये पूर्व कर्मोंके फल का अनुभव (परिणाम) है।—१०

एह शरीर अशाश्वतो, खिण में छीजंत ।

प्रीत किसी ते उपरे,जे स्वारथवंत । रे ११ ।

भावार्थ=तू ओरों की बात जाने दे। तेरा यह शरीर भी एक क्षण में छीजने-वाला है, अशाश्वत है। स्वार्थी है। इससे प्रीति कौसी? अर्थात् इस स्वार्थी शरीर से भी प्रीति करना उचित नहीं।—११

ज्यां लगे तुज इण देह थी, छे पूरव संग ।

त्यां लगे कोटि उपाय थी, नवि थाये भंग । रे १२ ।

भावार्थ=यह भी निश्चित है कि, जबतक इस देहके साथ तेरा पूर्वसंग (आयु कष्ट बंधन) है तब तक तो कोटि उपाय करने पर भी इसका नाश नहीं होगा, इसलिए इसके नष्ट होने की चिन्ता न कर।१२।

**आगल पाछल चिहुं दिने, जे विणसी जाव
रोगादिक थी नवि रहे, कीधे कोटि उपाय ॥१३ रेजीव०॥**

भावार्थ—दो दिन पहले हो या पीछे, पर यह शरीर विनाश होनेवाला ही है, और कोई उपाय करके भी उसे रोगादि से मुक्त नहीं रखा जा सकता । अतः नष्ट होनेवाले एवं रोगों के भंडार इस शरीर पर प्रीति करना युक्त नहीं —१३

अंते पण एने तज्यां, थाये शिव सुख ।

ते जो छूटे आप थी, तो तुज श्यो दुःख ॥१४ रेजीव०॥

भावार्थ—आखिर तो इस शरीर(कर्म) को छोड़ने से ही मोक्ष के सुख मिलेंगे । अतः यह शरीर अपने आप छूट रहा है, तो तुम्हें दुःख क्यों होना चाहिए । एक न एक दिन इस शरीर को तो छोड़ना ही पड़ेगा न ? —१४

ए तन विणसे ताहरे, नवि कोई हाण ।

जो ज्ञानादिक गुण तणो, तुज आवे भाण ॥१५ रेजीव०॥

भावार्थ—तुम्हें यदि यह ध्यान हो जाय, कि ज्ञान-दर्शन-आदि गुण ही मेरी चीजें हैं । तो इस शरीर के विनाश होने से तेरी कोई हानि नहीं है, क्योंकि तेरे गुण तो तेरे पास हैं । शरीर तो पुद्गलों से बना होने से आत्म से पर ही है, यह जाता है तो जाने दे, उसके जाने की चिन्ता न कर ।—१५

तू अजरामर आतमा, अविचल गुण राण ।

क्षण भंगुर जड देह थी, तुज किहांपिछाण॥१६ रेजीव०॥

भावार्थ—तू अजर-अमर-अविचल गुणों का राजा-आत्मा है । इस क्षणभंगुर जड़ (अचेतन) शरीर से तेरी पहिचान वास्तविक नहीं है । तेरी पहिचान तो ज्ञान-

दर्शन आदि आत्मिक गुण एवं चैतन्य स्वभाव से है। शरीर जड़ हैं, आत्म चेतन है अतः जड़ पदार्थ से तेरी पहिचान नहीं हो सकती। =१६

छेदन भेदन ताडना, वध बंधन दाह ।

पुद्गल ने पुद्गल करे, तू अमर अगाह ॥१७ रे जीव०॥

भावार्थ=काटना, टुकड़े करना, ताड़ना, मारना, बांधना, जलाना, वगैरह-तो पुद्गलों द्वारा एव पुद्गलों का ही होता है। रे जीव ! तू तो अछेद्य, अमेद्य, अधाह्य, अमर तथा अगाध है। यदि तुझे कोई कष्ट दे, तब तू ऐसा सोच कि कष्ट देनेवाला भी देहादि जड़ पदार्थों से देता है और जिसे देता है वह शरीर भी पुद्गल रूप जड़ ही है। आत्मा को तो कोई वध, बंधन, दाह होता ही नहीं है अतः तू उसके लिए दुखी मत हो—१७

पूर्व कर्म उदये सही, जे वेदना थाय ।

ध्यावे आतम तिण समे, ते ध्यानी राय ॥१८ ॥ रे जीव०॥

भावार्थ=पूर्व-कर्मों के उदय से जो भी व जब भी वेदना का अनुभव हो तू समभाव व शांति रख। ऐसे वेदना के समय में जो आत्मा का ही ध्यान करता है-वही विशिष्ट ध्यानी है अर्थात् वेदना, ध्यानी के लिए परीक्षा का समय है। उस समय शरीर का ध्यान न कर आत्मा का ही ध्यान रखता है वही ध्यानीयों में श्रेष्ठ है।—१८

ज्ञान-ध्यान नी वातड़ी, करणी आसान ।

अंत समे आपद पडयां, विरला करे ध्यान ॥१९ रे जीव०॥

भावार्थ=(उच्च कोटिके) ज्ञान एवं ध्यान की बातें बनानी तो आसान हैं। परंतु जब अंतकाल (मृत्यु के निकट) आने पर, वेदनाओं व विपत्तियोंके पहाड़ टूटते

हैं तब कोई विरले पुरुष ही आत्मा का ध्यान घर सकते हैं अर्थात् केवल बातों से कुछ सिद्ध नहीं होती, अंतिम समय आपदाओं के आनेपर भी समभाव व आत्म ध्यान बना रहे, तभी सिद्धि मिलेगी —१६

अरति करी दुःख भोगवे, परवश जिम कीर ।

तो तुज जाणपणा तणो, गुण केवो धीर ॥२० रे जीव०॥

भावार्थ=यह तो निश्चित है कि रोग और विपत्तियाँ के सहे बिना कोई, चारा नहीं। चाहे कोई रो कर सहे, या हंस कर। जैसे पिजरे में पड़ा हुआ तोता परवशता से दुःख भोगता है, वैसे ही यदि तू रो करके कष्ट के दिन गुजारता है तो हे धीर ! तेरे पाये हुये ज्ञान का कौन सा गुण हुआ ? फलितार्थ यह है कि विपत्तिकाल में हाय। यह दुख क्यों आ गया, कैसे छूटेगा ? ऐसा आर्त ध्यान नये कर्मों का बंध करने वाला है। समता से कष्टों को सहने का यह लाभ है कि पिछले कर्म भोग लिये जाते हैं और नये कर्मों का बंध नहीं पड़ता—२०

शुद्ध निरंजन निरमलो, निज आतम भाव ।

ते विणशे कहे दुःख किसो, जे मिलियो आव ॥२१ रे जीव०॥

भावार्थ=तेरी आत्मा का स्वभाव या स्वरूप तो शुद्ध निरंजन और निर्मल है इसके अलावा जो कर्मों के योग से शरीर, धन परिजनादि मिले हैं, उनके विनास से तुझे दुःख कैसा ! अर्थात् किंचित भी कष्ट नहीं होना चाहिये, क्योंकि उनका आत्मा के साथ कोई तात्त्विक संबंध नहीं।—२१

देह गेह भाड़ा तणो, ए आपणो नोहि ।

तुज गृह आतम ज्ञान ए, तिण मांहे समाहि ॥२२ रे जीव०॥

भावार्थ=जैसे किरायें पर लिया हुआ भकान अपना नहीं होता है, वैसे ही यह शरीर रूपी आवास थोड़े दिन के लिए ग्रहण किया हुआ है; अतः इसे जब कभी भी छोड़ना ही है। तेरा अपना घर तो आत्म-ज्ञान है। उसी में रहने से समाधि है। अर्थात् शरीर पर अपना ममत्व त्यागकर आत्म स्वरूपमें निवास किया कर।—२२

मेतारज सुकोसलौ, वली गजसुकुमाल ।

सनतकुमार चक्री परे, तन ममता टाल ॥२३ रे जीव॥

भावार्थ=मुनि मेतार्य, १ मुनि सुकोसल, २ मुनि गजसुकुमाल, ३ तथा सनतकुमार चक्रवर्ती की तरह तू भी अपने शरीर की ममताको टाल, हटा।—२३।

कष्ट पड्यां समता रमे, निज आत्म ध्याय ।

‘देवचन्द्र’ तिण मुनि तणां, नित वंदुं पाय ॥२४ रे जीव॥

भावार्थ—जो मुनि कष्ट पड़ने पर भी अपनी आत्माको ध्याते हुये समतामें रहते हैं। उन मुनियों के चरणों में मैं नित्य वंदना करता हूँ, यों श्री देवचन्द्र जी महाराज कहते हैं।—

नोट—१-२-३-४ की जीवनियां परिशिष्ट में पढ़िये ।

—:—:

ढल४—चौथी एकत्व भावना की

(प्राणी धरीए संवेग विचार-ए देखी)

ज्ञान ध्यान चारित्र ने रे, जो दृढ करवा चाह ।

तो एकाकी विहरतां रे, जिन कल्यादि साय रे प्राणी ।

एकल भावना भाव ! शिव मारग साधन दाव रे प्राणी ॥ १ ॥

भावार्थ—चौथी भावनाकी आधार-शिला स्वरूप तीसरी सत्त्व-भावना बडा बूके । क्योंकि चौथी एकत्व भावना का अधिकारी वही मुनि है, जो कि सत्त्व-बाली है । चाहे ज्ञानी हो, तपस्वी हो, यदि सत्त्वहीन हो, तो वह एकाकी विचारने के अयोग्य है । इसलिए सत्त्व के पश्चात एकत्व का स्थान है । हे मुनि ! हुके ज्ञान, ध्यान, और चारित्र को दृढ बनाने की इच्छा हो, तो एकाकी विचरवा बूवा जिनकल्पिपना साध । रे प्राणी ! तू एकत्व-भावना रखा कर । यही मोक्ष का मार्ग है । अर्थात् सिद्धिसाधना का दाव (उपाय) है । १ ...

साधु भणी गृहवास नी रे, छूटी ममता तेह ।

तो पण गच्छवासी पणो रे, गण गुरु पर छै नेह, रे प्राणी । २ ।

भावार्थ—यद्यपि साधु बनने से गृहवास की ममता तो छूट गई । फिर भी गच्छवासी अवस्था में अपने सम्प्रदाय और गुरु पर स्नेह तो विद्यमान है ही । इसलिए कहते हैं कि तू इनका प्रतिबंध भी छोड़ ... । २

वन-मृगनी परे तेहथी रे, छांड़ि सकल प्रतिबंध ।

तू एकाकी अनादि नोरे, किण थी तुज प्रतिबंध रेप्रा०॥३॥

भावार्थ—सारे प्रतिबंधों को छोड़कर वन-मृग की तरह विचर । जब कि तू अनादिकाल से अकेला है, तब तेरे पर प्रतिबंध लगाने वाला कौन है । अर्थात् ये प्रतिबंध अज्ञान एवं कल्पना के कारण ही है, इनसे ऊपर उठ । ३...

शत्रु मित्रता सर्व थी रे, पामी बार अनन्त ।

कोण सयण दुश्मन किश्यो रे, काले सहु नो अंतरे प्रा०॥४॥

भावार्थ—तू सभी जीवों के साथ एकवार नहीं, किंतु अनंतवार शत्रुता और मित्रता का सम्बन्ध बांध चुका है । तब कौन मित्र है और कौन तेरा शत्रु ! आखिर समय आने से शत्रु और मित्र सभी का अंत हो जाता है । अतः शत्रु या मित्र किसीका भी सम्बन्ध व प्रतिबंध न रख ॥ ४ ॥

बांधे करम जीव एकलो रे, भोगवे पण ते एक ।

किण ऊपर किण वातनी रे, राग द्वेष नी टेक रेप्रा०॥५॥

भावार्थ—यह जीव कर्मबंध भी अकेला करता है और भोगता भी अकेला ही है । फिर किसी पर राग और द्वेष की टेक किस बात के लिये रखता है । ५

जो निज एक पणुं ग्रहे रे-छोड़ी सकल परभाव ।

शुद्धात्म ज्ञानादिशुं रे एक स्वरूपे भाव रे प्रा०॥६॥

भावार्थ—यदि तू सारे परभावों को छोड़कर अपना एकत्व-भाव ग्रहण करले तो तू ज्ञानादि सै एकस्वरूप याने अभिन्न हैं ऐसी ज्ञानादि गुण सम्पन्न शुद्धात्मा की भावना कर -६-

आन्यो पण तू एकलो रे, जाइश पण तू एक ॥

तो ए सर्व कुटुम्ब थीरे, प्रीत किसी अविवेक रे प्रा॥७॥

भावार्थ—तू अकेला ही आया और अकेला ही जायेगा अरे अविवेकी !
फिर तुम्हें सारे कुटुम्ब से प्रीत कैसे हो रही है ? अर्थात् यह अविवेक छोड़ ॥ ७ ॥

वन मांहे गज सिंहादि थीरे, विहरतां न टले जेह ।

जिण आसन रवि आथमेरे, तिण आसन निशि छेहरेप्रा॥८॥

भावार्थ—जगल में विहार करते समय यदि दुष्ट हाथी, सिंह वगैरे हिंसक जानवर सामने आजाये तोभी जिनकल्पी मुनि अपना मार्ग बदलते नहीं, अपितु निर्भय होकर उनके सम्मुख जाते हैं और जिस स्थान पर, जिस आसन से खड़े या बैठे सूर्यास्त हो गया, तो उसी आसन से सारी रात बिता देते हैं । इधर उधर हिलने डोलने तक का काम नहीं । एकत्व भावना वाले मुनि ऐसे ध्यान मग्न होते हैं कि रात भर एक ही आसन से ध्यान करते रहते हैं । ८ ...

आहार ग्रहे तप पारणे रे, करमां लेष विहीन ।

एक बार पाणी पीवतां रे, वनचारी चित्त अदीन रे प्रा॥९॥

भावार्थ—जिनकल्पी मुनि तपस्या के पारणे में ही आहार ग्रहण करते हैं । अर्थात् प्रतिदिन कोई न कोई तप चालू रहता ही है । वह आहार भी लेष न लगे वैसा, अर्थात् हल्का सूखा लेंगे वह भी कर पात्र में । वे आहार के समय ही पानी भी एक ही बार पीते हैं । वे वनचारी अर्थात् सदा वन में विचरते हुए भी चित्तमें नहीं लाते कि मेरा क्या होगा ॥ ९ ॥

एह दोष पर ग्रहण थी रे, पर-संगे गुण हाण ।

पर-धन-ग्राही चोर ते रे, एकपणो सुख ठाण रे प्रा॥१०॥

भावार्य—यह जितना भी दोष है, वह सारा पर (पुद्गल) को ग्रहण करने से है । पर-संग (पुद्गलों के संग) से आत्म गुणों की हानि होती है । व्यवहार दृष्टि से भी “पर धन ग्राही” चोर कहा जाता है व कष्ट पाता है । आहारादि ग्रहण करना भी पर पुद्गलों का ही ग्रहण है । अतः पर संग को छोड़ कर एकाकीपन रखना ही सुखों की खान है ॥ १० ॥

पर संयोग थी बंध छूँ रे, पर वियोग थी मोक्ष ।

तेणे तजी पर मेलावडो रे, एकपणो निज पोष रे प्रा०॥११॥

भावार्य—पुद्गलों के संयोग से बंध है और इनके वियोग से मोक्ष । इसलिये पर का मिलाप छोड़कर एकाकीपन का पोषण कर अर्थात् तेरा इन पर संयोगों से कोई सम्बन्ध मान । मैं अकेला हूँ, मेरा इनसे कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसे भाव को= पुष्ट करता रह —११

जन्म न पाम्यो साथ को रे-साथ न मरशे कोय ।

दुःख वहेंचवा को नहीं रे, क्षणभंगुर सहु लोय रे प्रा०॥१२॥

भावार्य—न तों कोई तेरे साथ जन्मा है न कोई तेरे साथ मरेवा ही । जीते-जी भी तेरे रोगादि दुःख में हिस्सा बंटानेवाला कोई नहीं है, अपने कष्ट खुशे स्वयं ही भोगने पड़ते हैं । सोच ! सारा संसार ही क्षणभंगुर है ॥ १२ ॥

परिजन मरतो देखीने रे, शोक करे जन मूढ ।

अवसर वारो आपणो रे, सहु जन नी ए रूढ रे प्रा०॥१३॥

भावार्य—किसी कुटुम्बी का मरण देखकर मनुष्य शोक करता है । परन्तु सोचना चाहिए, कि अवसर आने पर तेरा भी वारा आनेवाला है । क्योंकि जो जन्मे हैं, वे सारे मरनेवाले हैं ॥ १३ ॥

सुरपति चक्री हरि बलि रे, एकला परभव जाय ।

तन धन परिजन सहु मिली रे, कोई सखायन थायरे प्रा॥१४॥

भावार्थ—इन्द्र, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, जैसे महापुरुष भी परभव में अकेले ही जाते हैं । तन, धन, परिजन में से कोई भी उनका सहायक व साथी नहीं बनता—॥ १४ ॥

ज्ञायक रूप हूँ एक छूँरे, ज्ञानादिक गुणवंत ।

बाह्य जोग सहु अवर छैरे, पाय्यो बार अनंत रे प्रा॥१५॥

भावार्थ—ज्ञानादिक अनन्त गुणोंवाला मैं ज्ञायक स्वरूप अकेला ब्रह्मा हूँ । बाकी के सारे बाह्य संयोग मेरे से मिले हैं । इन बाह्य संयोगों को मैं कर्मकार पा चुका हूँ । इसलिये इनको छोड़ने में डीक नहीं करना चाहिए ॥ १५ ॥

करकंडु१ नमि२ नग्गई३ रे, दुम्मुह४ प्रमुख ऋषिराय ।

मृगापुत्र५ हरिकेशीना६ रे, वंदूँ हूँ नित पाय रे प्रा॥१६॥

साधु चिलाती७ सुत भलो रे, बलि अनाथी तेम ।

इम मुनि गुण अनुमोदतां रे, 'देवचन्द्र' सुख क्षेम रेप्राणी ।१७॥

भावार्थ—करकंडु, नमिराजर्षि, नग्गई, दुम्मुह, ये ४ प्रत्येक बुद्ध हैं । मृगापुत्र, हरिकेशी, चिलातीपुत्र, तथा अनाथी मुनि वगैरे मुनियों के चरणकमलों में नित्य नमस्कार करता हूँ । क्योंकि ऐसे मुनिजनों के गुणों की अनुमोदना (प्रशंसा) करने से सुख और कल्याण होता है । यों श्री देवचन्द्र श्री महाराज कहते हैं ॥ १६-१७ ॥

नोट :-१-२-३-४-५-६-७-८ की जीवनियाँ परिशिष्ट में पढ़िये ।

ढाल ५ पांचवीं तत्त्व भावना की

(इण्णि परे चंचल आउखो जीव जागो रे.....ए देशी)

चेतन ए तन कारिमो तुमे ध्यावो रे शुद्ध निरंजन देव
भविक तुमे ध्यावो रे, शुद्ध स्वरूप अनूप भविक १ आंकणी ।

भावार्थ—रे चेतन ! इस तन को अनित्य समझो । शुद्ध निरंजन देव
का ध्यान धरो । तथा आत्मा के अनुपम शुद्ध स्वरूप को ध्यावो ॥ १ ॥

नरभव श्रावक कुल लह्यो, तुम०, लाधो समकित सार । भविका
जिन आगम रुचिसुं सुणो, तुम०; आलसनींद निवार । भविक२ ।

भावार्थ—रे जीव ! तुझे मनुष्य का जन्म मिला । श्रावक का कुल
मिला । सारभूत समकित मिला । अब आलस्य और नींद को त्याग करके रुचि
पूर्वक जैनागमों को सुना कर ॥ २ ॥

समयांतर सहभाव नो, तु०, दर्शन ज्ञान अनंत । भ० ।

आतम भावे थिर सदा; तु०, अक्षय चरण महंत । भ० ३ ।

भावार्थ—जिसे समकित की प्राप्ति हो गयी, उसे किसी न किसी समय
केवलज्ञान अवश्य होगा । केवलज्ञान और केवल दर्शन सहभावी हैं, मतान्तरा-

नुसार समयांतर से । आत्म भावों की सदा के लिये स्थिरता हो जाना ही अक्षय चारित्र्य है । ज्ञान दर्शन चारित्र्य यही मोक्ष मार्ग है ॥ ३ ॥

तीन लोक त्रिहुं कालनी, तु० परिणति तीन प्रकार । भ० ।

एक समे जाणे तिणे, तु० नाण अनन्त अपार । भ० ४ ।

भावार्थ—केवलज्ञान एक ही समय में तीन लोक (ऊर्ध्व-मध्य-अधोलोक) तथा तीन काल (अतीत-अनागत-वर्तमान) की, तीन प्रकार (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) की परिणति को जान लेता है । अनन्त द्रव्य तथा अनन्त द्रव्यों की अनन्त अवस्थाओं को एक ही साथ में जानने के कारण ज्ञान अनन्त एवं अपार कहा जाता है । ४।

सकल दोषहर शाश्वतो, तु० वीरज परम अदीन । भ० ।

सूक्ष्म तनु बन्धन विना, तु० अवगाहना स्वाधीन । भ० ५ ।

भावार्थ—आत्म वीर्य (आत्म शक्ति) सारे दोषों को हरनेवाला है । तथा परम उल्लासमय और शाश्वत है । सूक्ष्म शरीर (तैजस और कार्मण) के बन्धन विना उसकी स्वाधीन (स्वतंत्र) अवगाहना है ॥ ५ ॥

पुद्गल सकल विवेक थी, तु० शुद्ध अमूर्ति रूप । भ० ।

इन्द्रिय सुख निस्पृह थई, तु० अकषाय अबाह स्वरूप । भ० ६ ।

भावार्थ—सारे पुद्गलों को दूर करने पर आत्मा अमूर्त और शुद्ध है । इन्द्रियजनित सुखों की स्पृहा त्यागने से आत्म स्वरूप निखर आता है, आत्मा को अकषाय तथा अव्याबाध स्वरूप माना गया है ॥ ६ ॥

द्रव्य तणा परिणाम थी, तु० अगुरू लघुत्व अनित्य । भ० ।

सत्य स्वभाव मयी सदा, तु० असत्य तजो तुमे मित्त । भ० ७ ।

भावार्थ—जोव द्रव्य की परिणमनशीलता से तू अगुलघु (न हल्का न भारी) ओर नित्य है । सदा सत्यस्वभाव वाला है । हे मित्र ! असत्य—परभावों को छोड़ दे ॥ ७ ॥

निजगुण रमता राम ए, तु० सकल अकल गुण खाण । भ० ।

परमात्म पर ज्योति ए, तु० अलख अलेप बखाण । भ० ८ ।

भावार्थ—यही चेतन निज गुणों में रमण करने से “रमताराम” है । सारे ही अकलनीय गुणों की खान है । परमात्मा है । परंज्योति है । अलख है । अलेप है ॥ ८ ॥

पंच पूज्य थी पूज्य ए, तु० सर्व ध्येय थी ध्येय । भ० ।

ध्याता ध्यान अरु ध्येय ए, तु० निश्चै अभेद ए श्रेय । भ० ९ ।

भावार्थ—निश्चय दृष्टि से यह आत्मा पांचों (अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) पूज्यों से पूज्य, सारे ध्येयों से ध्येय है । ध्याता भी यही है, ध्यान भी यही है, तथा ध्येय भी आत्मा ही है । निश्चय नय की दृष्टि से यह अभेदभाव ही श्रेय--कल्याणकारी है ॥ ९ ॥

अनुभव करतां एहनो, तु० थाये परम प्रमोद । भ० ।

एक रूप अभ्यास सुं, तु० शिव सुख छै तसु गोद । भ० १० ।

भावार्थ—इस आत्म तत्त्व का अनुभव करने से ही आनन्द प्राप्त होता है । जिसे एकरूप (अभेदभाव) से इस का अभ्यास है; मोक्ष सुख तो उसकी गोद में ही समझो, अर्थात् वह जीवन्मुक्त पुरुष है ॥ १० ॥

बंध अबंध ए आत्मा, तु० करता अकरता एह । भ० ।

एह भोगता अभोगता, तु० स्यादवाद गुण गेह । भ० ११ ।

भावार्थ—यह आत्मा बन्ध भी है अबन्ध भी है । कर्ता भी है अकर्ता भी है । भोक्ता भी है, अभोक्ता भी है । इस प्रकार स्याद्वाद रूप विभिन्न गुणों का घर है ॥ ११ ॥

एक अनेक स्वरूप ए, तु० नित्य अनित्य अनादि । भ० ।

सदसद भावे परिणम्या, तु० मुक्त सकल उन्माद । भ० १२ ।

भावार्थ—यह आत्मा एक भी है अनेक भी है । नित्य भी है, अनित्य भी है, अनादि है । सत् भी है असत् भी है । ऐसे अनन्त धर्मों से युक्त अनादि आत्मा सारे उन्मादों से मुक्त है ॥ १२ ॥

जप तप किरिया खप थकी, तु० अष्ट करम न विलाय । भ० ।

ते सहु आतम ध्यान थी, तु० क्षण में खेरू थाय । भ० १३ ।

भावार्थ—बड़े प्रयत्न पूर्वक जप और तप आदि क्रियानुष्ठान करने से भी जिन अष्ट कर्मों का क्षय नहीं होता, वे सारे कर्म आत्मा के ध्यान से एक क्षण में क्षय हो जाते हैं ॥ १३ ॥

शुद्धात्म अनुभव विना, तु० बंध हेतु शुभ चाल । भ० ।

आतम परिणामे रम्या, तु० एहज आश्रव पाल । भ० १४ ।

भावार्थ—जिस पुरुष को शुद्धात्मा का अनुभव नहीं है, उसके लिये शुभ-कार्य भी बंधन के कारण हैं । और आत्म भाव में रमे हुये मुनिके लिये वही कार्य आश्रव (बंध) को रोकने वाले संवर स्वरूप हो जाते हैं 'जे आसवा ते पस्सिवा' १४,

इम जाणी निज आतमा, तु० वरजी सकल उपाध । भ० ।

उपादेय अवलंब ने, तु० परम महोदय साध । भ० १५ ।

भावार्थ = रे जीव ! यों समझ करके सारी उपाधियों को छोड़कर, उपादेय आत्म तत्त्व का अवलंबन (सहारा) लेकर परम महोदय (मोक्ष) की साधना कर ।—१५

भरत१, इलासुत२, तेतली३, तु० इत्यादिक मुनिवृन्द । भ० ।

आतम ध्यान थी ए तरया, तु० प्रणमे ते देवचन्द्र । भ० १६ ।

भावार्थ = भरत चक्रवर्ती, इलासुत, तेतली प्रधान आदि मुनिगण, जो आत्मा के ध्यान मात्र से तरे हैं । उन्हें श्री देवचन्द्र जो महाराज प्रणाम करते हैं ।—१६

नोट.—१-२-३ का जीवन पढ़िये, परिशिष्ट

—०—

ढाल ६ छठी (प्रशस्ति) भावना महौत्म्य

(“सेल्य शत्रु जे सिद्धा” ए देशी)

भावना मुक्ति निशाणी जाणी, भावो आसक्ति आणीजी ।

योग कषाय कपट नी हाणी, थाये निर्मल जाणी जी । १ ।

भावार्थ = मोक्ष की निशानी समझकर तन्मय पूर्वक (अंतर राग से) ये पांचों भावनायें भावो । जिससे योग, कषाय-कपट का नाश होकर आत्मा निर्मल होती है ।—१

पंच भावना ए मुनि मन ने, संवर खाणी बखाणी जी ।
बृहत्कल्प सूत्र नी वाणी, दीठी तेम कहाणी जी । २ ।

भावार्थ = मुनि जिवन के लिये तो ये पांचों भावनार्यें संवर की खान बतलाई हैं । जैसा “श्री बृहत्कल्प सूत्र” में देखा, वैसा इनका स्वरूप यहाँ कहा गया है । २ ।

कर्म कतरणी शिव निसरणी, ध्यान ठाण अनुसरणी जी ।
चेतन राम तणी ए घरणी, भव समुद्र दुःख हरणी जी । ३ ।

भावार्थ = ये भावनार्यें कर्मों को काटने के लिए कैंची, मोक्ष महल पर आरोहण करने के लिये सीढ़ी, शुभ ध्यान के स्थानों का अनुगमन करनेवाली, चेतनराम की गृहिणी, तथा भव समुद्र के दुःखों को हरण करने वाली हैं । — ३

जयवंता पाठक गुण धारी, राजसागर सुविचारी जी ।
निर्मल ज्ञान धरम सम्भाली पाठक सहु हितकारी जी । ४ ।

भावार्थ = अब ग्रन्थ समाप्ति करते हुए कवि अपनी गुरु परंपरा का वर्णन करते हैं । “श्री राजसागर” नाम के उपाध्याय बड़े अच्छे विचारशील, गुणवान, तथा जयवंत हुये । उनके शिष्य श्री “ज्ञानधर्म” नामक उपाध्याय बड़े निर्मल और हितकारी हुये । — ४

राजहंस सद्गुरु सुपसाये, देवचन्द्र गुण गाय जी ।
भविक जीव जे भावना भावे, तेह अमित सुख पायजी । ५ ।

भावार्थ = उनके शिष्य “श्री राजहंस” उपाध्याय हुये । इनकी कृपा से मुनि देवचन्द्र भावनाओं के गुण गाता है । जो कोई भव्यजीव इन भावनाओं को भावेगा, वह अमित सुख (मोक्ष) पायगा । — ५

जेसलमेरी साह सुत्यागी, वर्द्धमान बड़भागी जी ।

पुत्र कलत्र सकल सोभागी, साधु गुण ना रागी जी । ६ ।

भावार्थ =जेसलमेर निवासी सेठ श्री वर्द्धमान शाह बड़े त्यागी और सज्जन थे । पुत्र-स्त्री-इज्जत आदि सुखों की दृष्टि से भी भाग्यशाली थे । और साधुओं के गुणों के अनुरागी (भक्त) थे ।—६

तस आग्रह थी भावना भाई, ढालबंध मां गाई जी ।

भणशे गुणशे जे ए ज्ञाता, लहशे ते सुखसाता जी । ७ ।

भावार्थ =उनके आग्रह से इन भावनाओं को ढालबद्ध लोक-देशियों की भ्रांति-नीमय पद्यबद्ध बनाया है । जो कोई जानकार जीव पड़ेगा, व मनन करेगा उसे सुख और शान्ति की प्राप्ति होगी ॥७॥

मन शुद्ध पंचे भावनाभावो, पावन जिन गुण पावोजी ।

मन मुनिवर गुण संग बसावो, सुख सम्पति गृह थावोजी । ८ ।

भावार्थ =यह अंतिम पद्य शिक्षात्मक और आशीर्वादात्मक है । हे भव्यों ! मन की शुद्धि पूर्वक ये पांचों भावनायें भावो । और पवित्र जिन गुण को पाओ । मुनिजनों को, उनके गुणों के साथ अपने मन में बसावो । तुम्हारे घर सुख और संपत्ति हो ।—८

“इत्यलम्”

:—:—:

परिशिष्ट (क)

बृहत्कल्प और पांच भावनायें

श्रीमद् देवचन्द्र जी महाराज ने मंगलाचरण के तीसरे दोहे में पंच-भावनाओं का आधार बृहत्कल्प सूत्र बतलाया है। श्री बृहत्कल्प सूत्र में भावनाओं को संख्या तो यही है, किन्तु नाम और क्रम में अन्तर है। सूत्रानुसारी नाम और क्रम इस प्रकार है।

(१) तपो भावना— (२) सत्व भावना— (३) सूत्र-भावना— (४) एकत्व भावना— (५) और बल भावना ।

इनमें दूसरी सत्व भावना और पांचवीं बल भावना में शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से विशेष अन्तर नहीं है। किन्तु भाष्यकार ने शारीरिक शक्ति को बल गिनावाया है। तथा सत्व-भावना के अभ्यासार्थ पांच विशेष प्रतिज्ञायें बतलाई हैं। वे ये हैं—(१) उपाश्रय में (२) उपाश्रय से बाहर (३) चौराहे पर (४) शून्यगृह में तथा (५) श्मशान भूमि में जाकर ध्यान करना। पहली प्रतिज्ञाका पालन करते समय रात्रि में गेष साधुओं के सो जाने पर मुनि कायोत्सर्ग करके बैठे। उस समय उपाश्रय में गाढ अंधकार होने से रात्रि परिभ्रमणशील जानवरों (चूहे बिल्लियाँ आदि) द्वारा स्पृष्ट होने से अथवा काटे जाने से रोगट भी खड़े न हो, इस प्रकार का सत्व (साहस) रखे। इस तरह अगली २ प्रतिज्ञाओं में देवता-मनुष्य तिर्यञ्च आदि के विशेष भय पैदा होने पर भी डरे नहीं। १

श्रुत से कालमान—तीसरी सूत्र-भावना में कहा है कि, यद्यपि

अपने नाम की तरह ही मुनि को सारा श्रुत कण्ठस्थ है। फिर भी काल-परिमाण के लिये श्रुताभ्यास करे। श्रुत-परिवर्तन के आधार पर उच्छ्वास का काल मान जाना जाता है। फिर उच्छ्वाससे निःश्वास, निःश्वाससे प्राण, प्राणसे स्तोक, स्तोक से मुहूर्त्त, मुहूर्त्त से पौरुषी, पौरुषी से दिवस और निशा का परिज्ञान होता है।

काल मान की आवश्यकता—जब कभी आकाश मेघाच्छन्न हो, तब मुनि को उभय काल की क्रियाओं के प्रारम्भ और परिसमाप्ति का ज्ञान श्रुत परावर्तन से करना पड़ता है। श्रुत परावर्तन से कालमात निकालने की महत्ता इसलिये है कि जब आकाश निर्मल हो तब धूप और छाया से काल-माप निकालने से श्रुताभ्यास में विघ्न आता है। श्रुताभ्यास में इतना सूक्ष्म व्याघात भी क्यों होने दिया जाय, जब कि काल मापने का साधन स्वयं श्रुत परावर्तन है।

सबसे बड़ा तप-श्रुत—भाष्य की ११६६ वीं गाथा में श्रुत-स्वाध्याय को सब से बड़ा तप कहा है। (नवि अथि नवि होही सज्जाय समं तबोकम्म) इसलिए सूत्र भावना का विशेष महत्व है।

चौथी एकत्व-भावना में कहा है कि दीक्षित होने से स्वजनों का स्नेह तो छूट जाता है। किंतु सम्प्रदाय, आचार्य, गुरु भ्राता, तथा शिष्यों के साथ स्निग्ध अवलोकन, आहार उपधि आदि का लेन देन, सूत्र, तथा अर्थ की प्रतिपृच्छा, समवयस्कों से किंचित हास्य तथा बातें करते रहने से एक विशेष प्रकार का ममत्व हो जाता है। इस राग का निवारण के लिये एकलविहारी बनना उचित है, संबन्ध, आचार्य, शिष्य आदि का स्नेह छूट जाने के पश्चात् आहार और उपधिका ममत्व क्षीण होने लगता है। तत्पश्चात् शरीर का ममत्व छोड़ने का समय आ

जाता है। निर्ममत्व की दिशा में संकेत करते हुये कहा है कि किसी वषक द्वारा अपने को तथा स्वजनादि को भी मारते देखकर निश्चित स्थान और ध्यानासन से विचलित न हो।

पांचवीं बल-भावना में कहा गया है कि, अपत्य, कलत्र, आदि स्वजन दुर्ग में जो अप्रशस्त स्नेह है, उसे, तथा गुरु-गच्छ-शिष्य-उपधि-शरीर आदि पर जो प्रशस्त राग है, उसे छोड़ देने का नाम मानसिक बल है। मानसिक बल में शारीरिक बल की भी अपेक्षा है। संक्षेप में सारी भावनाओं का मूल सत्त्व और बल को बतलाया है।

संघ में रहता हुआ भी तीसरे प्रहर में गोचरी तथा प्रान्त आहार करे। इन भावनाओं से भावितात्मा मुनि जिनकल्पी के पूर्व रूप की साधना करे। फिर जिनकल्प, परिहार विशुद्ध कल्प, तथा अहालंद कल्प आदि में से एक को अंगीकार करे।



परिशिष्ट (ख)

=पांच अप्रशस्त-भावनायें=

पूर्वोक्त पांचों भावनायें प्रशस्त होने से मुनि के लिये आदरणीय हैं । और निम्नोक्त पांचों-भावनायें अप्रशस्त होने से सर्वथा त्याज्य हैं । अपनी आत्मा का उत्तरोत्तर विकास चाहने वाले को चाहिये, कि इन अप्रशस्त भवनाओं से परे रहे । संक्षेप में इनका स्वरूप तथा भेद इस प्रकार है ।—

(१) कांदर्पी-भवना=अट्टहास्य करना, गुरुजनों के साथ निष्ठुर तथा वक्र बोलना, काम की कथा-काम की प्रशंसा-तथा काम का उपदेश करना, भांड की तरह कायिक तथा वाचिक कुचेष्टाओंसे शौरोको हँसाना कांदर्पी-भावना कहलाती है । ऐसा करनेवाला मुनि संयमका विरोधक होकर बिङ्ग प्राय (कंदर्प-विट प्राय) देवता में जन्म लेता है—(१)

(२) दैवकिल्बिषी भावना)=ज्ञान की, केवलज्ञानी की, धर्माचार्य की, साधुओं की निंदा करना “दैवकिल्बिषी” भावना कही जाती है । इस भावना वाला मुनि किल्बिष (अंत्यज स्थानीय) देवता का आयुष्य बाँधता है .1...(२)

(३) आभियोगी भावना=भूतिकर्म, (डोरा बांधना) प्रश्न, (रमल प्रश्नावली प्रश्नाप्रश्न, (विद्याधिष्ठित देवी का कहा हुआ उत्तर प्रश्नकर्ता को बतलाना) निमित्त, (अष्टांग निमित्त) आदि से आजीविका करनेवाला मुनि आयुष्य पूर्ण करके आभियोगिक (भृत्य स्थानीय) देवयोनि में उत्पन्न होता है ... (३)

(४) आसुरी-भावना=कलह करना, पूजा प्रतिष्ठा के लिये तपस्या करना,

दया रहित होना, आसुरी भावना है। इस भावना वाल मुनि असुर (भुवनपति) देवता में उत्पन्न होता है।—४

(५) साम्मोही भावना-उन्मार्ग का उपदेशक, सत्यमार्ग का निन्दक, उन्मार्ग को ग्रहण करनेवाला अपनी तथा औरों की आत्मा को मूढ बनानेवाला “साम्मोही-भावना” का अधिकारी होकर अगला जन्म सम्मोह (देव-विशेष) देवता में लेता है ॥ ५ ॥

फलितार्थ यह है, कि भावनाओं के आधार पर ही आयुष्य-कर्म का बंध होता है। अतः बिभेकशील व्यक्ति का यह कर्तव्य हो जाता है, कि वह अपनी भावनाओं का निरीक्षण करता रहे।

यदि अशुभ कर्मिण्य तथा गंदे वातावरण से अप्रशस्त-भावनायें आती हों। उन्हें तत्काल निकाल कर सत्-साहित्य, सत्संगति, सद्धर्म-व्यान द्वारा भावनाओं को प्रशस्त बनाने का प्रयास करता रहे। “भावना भव नाशिनी” भावना के संसार-भवभ्रमण का नाश होता है।



परिशिष्ट (ग)

द्वितीय ढाल की प्रथम गाथा में निर्दिष्ट

तप भावनामें उल्लिखित तपस्याओं की विधियाँ

१ स्नावली तप की विधि:—

सर्व प्रथम एक उपवास, एक बेला, एक तेला, फिर लगातार आठ बेले । तत्पश्चात् एक उपवास से लेकर सोलह उपवास तक चढता जाये । फिर चौतीस (३४) बेले करे । तत्पश्चात् सोलह उपवास करके एक उपवास तक उत्तर बाये । फिर आठ बेले करे । फिर एक तेला, एक बेला, एक उपवास करके पूर्णाहुति कर डाले । इसमें तपस्या के दिन तीसरी चौरासी (३८४) और पारणे अठ्यासी ८८ होते हैं । कुल मिलाकर पन्द्रह महीने और बाईस (२२) दिन लगते हैं ।

इस तपकी चार परिपाटी हुआ करती हैं । पहली परिपाटी में पारणे के दिन विगयादिक भी लिया जा सकता है । दूसरी परिपाटी में विगय (घृत- दूध- दही-मिष्ठान्नादि) का सर्वथा त्याग रहता है । तीसरी परिपाटी में निर्लेप (बिना बघार) आहार लेना । चौथी परिपाटी में आयंबिल (किसी एक प्रकार के अनाज की बनी चीज, वह भी पानी में डुबोकर) करना आवश्यक हैं । इस प्रकार की कठिन तपस्या राजा श्रेणिक की रानी “काली” नामक” भार्या ने की थी ।—(सूत्र-अंतमङ्ग० वर्ग आठवाँ)

२ “कनकावली-तप” पूर्वोक्त रत्नावली तप में जिस जगह आठ बेले करने का विधान है, वहाँ कनकावली में आठ तेले तथा चौतीस बेलों की जगह

चौतीस तेले करने पड़ते हैं। बाकी सोलह उपवास तक आरोहण और अवरोहण उसी प्रकार का है। तपस्या के दिन पारणों भी उतने ही हैं। परिपाटियाँ भी चार हैं। यह तप राजा श्रेणिक की दूसरी रानी “सुकाली” ने किया था (जं० आठवाँ वर्ग)

३ “शुक्तावली—तप”

एक उपवास के बाद एक बेला, फिर एक उपवास के बाद एक तेला। ऐसे एक२ उपवास के अंतर से पन्द्रह उपवास तक चढना। फिर सोलह उपवास करके एक उपवास, पन्द्रह करके एक उपवास, यँ बेला करके एक उपवास तक उत्तर जाना। इसमें तप दिन २८६ और ५६ पारणों होते हैं। कुल इम्पारह मास ओर पन्द्रह दिन लफते हैं। चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में तीन वर्ष दस महीने चाहिये। पारणों की विधि रत्नावली तप के ही तुल्य है। यह तप श्रेणिक की नौवों रानी “प्रियसेन कृष्णा” ने किया था। —(जं० आ०)

४ “गुण-रत्न-संवत्सर—तप”

प्रथम महीने में एकाक्षर उपवास करना। दिवस में सूर्य कैसम्मुख दृष्टि रख कर जहाँ धूप आती हो वहाँ “आताषना-भूमि” में बैठ रहना। रात्रि में किसी भी वस्त्र को ओढे या पहने विना वीरासन से बैठना। इस प्रकार दूसरे मास में बेले२ पारणा। तीसरेमें तेले तेले। चौथे में चोले-चोले, पांचवें, छठे, सातवें, आठवें नौवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, सोलहवें मासमें बमशः पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह, सोलह उपवास करना।

इस तप में कुल तेरहमास और सित्तर दिन उपवास के और तिहत्तर दिन पारणा के होते हैं।

श्री स्कंधक मुनि ने यह तप किया था । (भगवती-शतकर;)

५ “जव मध्य तप” जैसे शुक्लपक्ष में एक-एक कला करके चांद बढ़ता है । वैसे जव मध्य तप करने वाला प्रतिपदा के दिन सिर्फ एक कवल आहार ले । दूसरे दिन दो कवल । यूं पूर्णिमा के दिन तक पन्द्रह कवल का आहार बढ़ाये । फिर कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की कलाओं की तरह कवल संख्या घटाता चले । अर्थात् प्रतिपदा को पन्द्रह कवल । द्वितीया को चवदह । यों अमावस्या को एक कवल तक आहार लेकर इस तप की समाप्ति करे । इस तप में एक महीना लग जाता है ।

६ “वज्र मध्य तप”

जैसे “जव मध्य तप शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से शुरू होकर कृष्ण पक्ष की अमावस्या को पूर्ण होता है ।

वैसे ही उससे विपरीत यह वज्र मध्य तप, कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को पन्द्रह कवल, अमावस्या को एक कवल फिर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को एक कवल, पूर्णिमा को पन्द्रह कवल आहार लेने से एक महीने में समाप्त होता है ।



परिशिष्ट [घ]

तपस्वी मुनिओं की जीवनियाँ

[१] मुनि ढंढरा कुमार

ढा० २गा० ॢ में निर्दिष्ट

ढारकाधीश श्रीकृष्ण वासुदेव के पुत्र का नाम ढंढण कुमार था । आप बड़े गुणवान और लावण्य वाले थे । श्री नेमिनाथ भगवान की वैराग्य-मयी वाणी सुनकर एक सहस्र रानियों का त्याग करके आप साधु बने । दीक्षा के साथ ही आप ने यह अभिग्रह किया, कि यदि मुझे अपनी लब्धि (भाग्य) का आहार मिले तो लेना नहीं तो तपस्या चालू रखनी । मैं अन्य साधुओं द्वारा लाया हुआ आहार न लूंगा, न मेरा लाया हुआ किसी को दूंगा । इस प्रकार का सम्भोग प्रत्याख्यान करके प्रतिदिन गौचरी जाते हैं । परन्तु पूर्वोपाजित अंतराय कर्म के उदय से शुद्ध आहार तो क्या, पानी तक नहीं मिला । इतने पर भी मुनि सौचते हैं । मेरे सहज-सहज तप हो रहा है । उत्सर्ग मार्ग की आराधना से पुद्गलों का संग छूट रहा है !

पूर्व-भव वर्णन

मुनि ने एक दिन प्रभु से पूछा, कि भगवन् ! मेरे ऐसा क्या अन्तराय कर्म बंधा हुआ है ? आहार-पानी भी नहीं मिलता । प्रभु बोले—तू किसान के जन्म में राजा की आज्ञा से पांच सौ हलों द्वारा खेती करवा रहा था । एक वक्त उन बेलों और आमियों के भोजन का समय हो जाने पर भी, तूने लोभ के कारण अपने निजी खेत की एक चास मुफ्त में निकलवाई थी । इस प्रसंग से बड़े तीव्र रस के साथ तेरे अन्तराय कर्म बंध गया । यहां आहार पानी न मिलना, उसी कर्म का फल है ! अब इसे समता से सहकर काट डालो ।

सर्वोत्कृष्ट मुनि—श्री कृष्ण वासुदेव ने प्रभु से पूछा कि भगवन्

आप के अठारह हजार साधुओं में सर्वोत्कृष्ट कौन है ? प्रभु ने फरमाया, कि ढंढण मुनि सर्व श्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि छः महीने होने आये हैं नितप्रति गौचरी को जाना और आहारादि न मिलना, तिस पर भी समता में लीन रहना, लोगों के प्रति द्वेष और अपने प्रति दीनता न होने देना, कर्मों को न कोसना; प्रमुख २ विशेषतायें हैं। ऐसा सुनकर प्रसन्न होते हुये श्रीकृष्ण महल को लोट रहै हैं। राज मार्ग पर सामने से श्रीढंढण मुनि को पधारते देखकर श्री कृष्ण ने हाथी से उतर कर मुनिजी को बंदना की। इस प्रसंग को देखकर किसी सेठ ने मुनिजी को मोदकों की मिठा दी। मुनिजी भगवान के पास पहुंचकर आहार दिखलाते हुये बोले—आज अंतराय कर्म टूट गया। प्रभु बोले—यह आहार तेरी लब्धि का नहीं है; यह तो श्री कृष्ण की लब्धि का है। ढंढण मुनि ने इस बात का यह गुण लिया; कि आज प्रभु की कृपा से ही मेरे अभिग्रह की सुरक्षा हुई है। नहीं तो टूट जाता।

कर्मों का चूर्ण—प्रभुकी आज्ञा लेकर लाया हुआ मोदक परठने को चले। जिस आहार को परठना पडता है, उसे इस तरह मिट्टी या राख में मिलाया जाता है; कि उस पर चीटियाँ आदि न आवें इसलिये मुनिजी मोदकों का मिट्टी के साथ चूरा कर रहे हैं। और भावना से कर्म रूपी पुद्गलों का चूर्ण करते हैं। जब तक मेरा अभिग्रह फला नहीं है तब तक आहार कैसे ग्रहण करूँ ? तथा साधक आहार तभी लेता है; जबकि साधना में अभिवृद्धि हो। इस प्रकार के चिंतन के साथ आत्म-तत्त्व में इतनी एकाग्रता बढी; कि उसी क्षण केवलज्ञान प्रगट हो गया। इस प्रकार श्री ढंढण मुनि ने अपना कल्याण कर लिया।

ढंढण मुनि के सम्बंध में श्रीमद् देवचंद्र जी रचित एक महत्वपूर्ण सञ्ज्ञाय भी प्राप्त है।

(१) श्री खंधक मुनि

(ढा० २ गा० ८ में निर्देश)

श्रावस्ती नगरी के “गर्दभालि” नामक परिव्राजक के शिष्य का नाम खंधक संन्यासी था। वह चार वेद इतिहास और निघण्टु (कोष) का सांगोपांग ज्ञाता था। एक वक्त श्रमण भगवान महावीर के श्रावक (उपदेश सुनानेवाला) पिगल नामक निग्रंथ ने परिव्राजक के स्थान पर जाकर निम्नोक्त प्रश्न-पूछे। हे स्कंधक ! लोक; जीव; सिद्धशिला और मुक्त जीव अंत सहित हैं या अंत रहित, तथा किस प्रकार के मरण से संसार (जन्म-मरण) बढ़ता या घटता है। इन प्रश्नों को दो तीन बार दुहराने पर भी स्कंधक को उत्तर नहीं आया। तब लोगों की कहते हुये सुना कि श्रमण भगवान महावीर समीपवर्ती “कयंगला नगरी” में आये हुये हैं। अतः स्कंधक ने वहां जाकर इन प्रश्नों का समाधान पाना उचित समझा। इसी भावना के साथ वह उधर चला।

उधर श्रमण भगवान महावीर ने श्री गौतम गणधर से फरमाया कि आज तुम्हें तुम्हारा पूर्व स्नेही मित्र मिलेगा।

गौतम बोले-भगवान् ! वह कौन होगा ?

प्रभु बोले-उसका नाम है खंधक संन्यासी।

गौतम बोले-उनके मिलने में कितनाक समय है ?

प्रभु बोले—बस ! थोड़ा सा। वह अभी इन २ प्रश्नों का समाधान पाने के लिये यहां आ रहा है।

गौतम बोले--क्या वह आपके पास दीक्षित होगा ?

प्रभु बोले—हां .।

यह सुनकर पूर्वा राग से प्रेरित; अथवा प्रभु की ज्ञानातिशय बताने के लिये; श्री गौतम स्वामी खंघक के सम्मुख जाकर बोले ।

भो ! स्कंधक ! स्वागतम्-मुस्वागतम् । फिर प्रभु के मुख से सुनी हुई बात का स्पष्टीकरण करते हुये कहने लगे कि; क्या आप इसीलिये आये हैं । स्कंधक ने आश्चर्य के साथ कहा कि; तुम्हें इन बातों का पता कैसे चला ? । गौतम बोले मेरे धर्माचार्य श्री श्रमण भगवान महावीर ने मेरे से कहा था; । वे सर्वज्ञ हैं; अनंत ज्ञानी हैं । चलिये अब उनके पास चलें । प्रभु के पास पहुंचते ही खंघक सन्यासी ने तीनबार प्रदक्षिणा पूर्वक भगवान को नमस्कार किया । प्रभु ने इन के छःहों प्रश्नों का समाधान कर दिया । इससे प्रभावित होकर खंघक सन्यासी ने भगवान के पास जैनी दीक्षा ले ली । फिर उन्होंने बारह अंगों का अभ्यास किया साधु की बारह प्रतिमाएं (प्रतिज्ञायें) धारण की; गुण रत्न संबत्सर नामक तपस्या की और बारह वर्ष की दीक्षा-पर्याय का पालन कर अंत में विपुलगिरि पहाड़ पर पादोपगमन संथारा करके बारहवें देवलोक में गये । (भगवती-शतक २)



(३) मुनि कुरुदत्त

(निर्देश—ढाल २ गाथा ८)

हस्तीनागपुर के निवासी कुरुदत्त नामक एक कुमार ने जैनी दीक्षा ली । फिर गुरुजी के पास आगमों का अभ्यास करके एकलविहारी होने की आज्ञा ली । आपने विहार करते २ एक उद्यान में पांच प्रहर तक ध्यान करने की प्रतिज्ञा लेकर पद्मासन लगा लिया । उस वक्त कई चोर किसी के यहां से गौओं को चुराकर मुनि के पास से निकले । पीछे से गौओं का मालिक वहां पहुंच कर मुनि से पूछने लगा कि, बतलाइये चोर किधर गये । मुनि ने सोचा बोलनेसे हिंसा की संभावना है, अतः ऐसे प्रसंग पर मौन ही श्रेयकर है । तब गौओं के मालिक ने नोकरों से कहा, इस मुनि के सिर पर अंगारे रखो, फिर अपने आप बतलायेगा । नोकरों ने तत्क्षण गीली मिट्टी लेकर मुनि के सिर पर पाल बांध डाली । और उसमें जाज्वल्यमान अंगारे भर दिये । सिर जलते हुये भी मुनि सत्त्व भावना के बल से अडिग बैठे रहे । और सोचने लगे, जलनेवाली वस्तु तो पुद्गल है । मेरी आत्मा तथा आत्मा के गुण ज्ञान, दर्शन चारित्र आदि तो कभी नहीं जलाये जा सकते । इस तरह एकत्व-भावना द्वारा समस्त कर्मों का क्षय करके मुक्ति पहुंच गये । (उत्तराध्ययन २)



(४) मुनि मेतार्य

(निर्देश ढाल० ३ गा० २३)

मुनि मेतार्य महान तपस्वी थे। एक वक्त पारणा लेने के लिये किसी सुनार के घर पहुँच गये। उस समय वह किसी की 'जबमाला' बनाने के लिये सोने के जव षड़ रहा था। उन जवों को खुले ही छोड़ कर मुनि को आहार देने के लिये उठ गया। पीछे से पास में बैठे हुए एक क्राँच पक्षी ने वे जव खा लिये, और उड़ कर सामने एक वृक्ष की डाली पर जा बैठा। मेतार्य मुनि ने इस पक्षी का यह काम देख लिया। अब गौ-चरी लेकर मुनि जाने लगे। इधर सुनार देखता है कि षड़े हुए जव नहीं है। सुनार का बहम मुनि पर गया और उन्हें पकड़ कर लाया। पहले तो धीमे से बोला मेरे जव लेकर कहाँ चले हो। लाओ मेरे जव। मुनि मौन रहे। तब वह जोशसे बोला, जव देते हो या नहीं। मुनि ने पंखी का नाम इसलिये नहीं बताया कि हिंसा की सम्भावना थी। मुनि द्वारा कुछ भी उत्तर न मिलने से वह मुनि को पीटने लग गया। मुनि तो फिर भी मौन। तब उसने रस्ती से हाथ-पैर बांध कर गरभागरम रेत में बिठा दिया। फिर भी मौन रहे। अन्त में चमड़े की रस्ती की गीली करके मुनि का सिर बांध दिया। ज्यों-ज्यों रस्ती सूखने लगी त्यों-त्यों सुनार का मुस्कराव और मुनि की वेदना बढ़ती ही गयी। मेतार्य मुनि ने तो जीवदया के लिये अपना बलिदान करना ही श्रेष्ठ समझ रखा था।

मुनि की आत्मा तो देहाध्यास से अपर उठी हुई थी। इनको शारीरिक

धर्मों का अनुभव ही नहीं रह गया था। सिर फटने के साथ-साथ कर्मों के बन्धन टूट गये।

एक जीवदया के लिये ऐसे महान मुनि ने अपना बलिदान करके सत्त्व भावना का महान आदर्श उपस्थित कर दिया। पीछे से सुनार के घर के सामने किसी लकड़हारे ने विश्राम लेने के लिये अपना भारा इतने जोर से जमीन पर फेंका, कि उस आवाज के धक्के से डर कर क्रौंच पक्षी ने सारे जब वापिस कर निकाल दिये। सुनार ने अब समझा कि निष्कारण ही मेरे द्वारा एक महान तपस्वी मुनि की हत्या हो चुकी। अब मेरा क्या होगा ? इस भय से घबरा कर भैरव्य मुनि का वेष पहन कर घर से निकल गया। अन्त में इसने भी अपना कल्याण कर लिया।

(५) कार्तिधर और सुकोसल

(निर्देश ढा० ३ गा० २३)

अयोध्या के नरेश कीर्तिधर अपने पुत्र को राजगद्दी देकर साधु बने। इससे महारानी को बड़ा दुख लगा। कालान्तर से कीर्तिधर मुनि पारणा लेने के लिये अयोध्या में आये। झरोखे में बैठी हुई महारानी ने मुनि को देखकर सोचा आप मुझे छोड़कर चला गया अब मेरे लड़के को भी साधु बना कर ले जायगा। यों सोच कर सेवकों से मुनि को नगरी से बाहर निकालने की आज्ञा दे दी। उन्होंने वैसा ही किया। तपस्वी और राजर्षि के साथ में ऐसा व्यवहार देखकर देखकर सारी जनता रानी को धिक्कारने लगी। राजमहलों में रहने वाली एक धाय माता ने सुकोसल राजा को इस बात की सूचना दे दी। राजा घबराया हुआ उठा और मुनि को वंदन करने के लिये चल पड़ा। मुनि ने उसे उपदेशा-

मृत का पान करवाया । अपनी माता के व्यवहार से संसार का स्वार्थीपन देखकर राजा सुकोसल संयम लेने को तैयार हो गया । तब सुकोसल की रानी चित्रमाला ने कहा, हे राजन । आप का वंश कैसे चलेगा ? राजा बोला—अभी तू गर्भवती है, मैं तेरे उदरस्थ को राज्य देता हूँ । मेरे इस शुभ कार्यों में कोई विघ्न मत करो । यों समझा कर राजा सुकोसल ने अपने पिता मुनि कीर्तिधर के पास दीक्षा ले ली ।

इस प्रकार की दीक्षा का पता चलते ही सुकोसल की माता रानी सह-देवी महलों से गिर कर मर गयी । और विशेष आर्तध्यान के कारण जंगल में बाघिनी हुई ।

घोर उपसर्ग—

अब कीर्तिधर और सुकोसल मुनि ने चौमासी तप के साथ गुफा में चौमास बिताया । फिर पारणा लेने के लिये दोनों मुनि शहर की तर्फ आ रहे हैं । रास्ते में वह (पूर्वजन्म की मां) बाघिनी आ गयी । पिता बोले—वत्स ! भयंकर कष्ट आ रहा है । अतः मुझे आगे आ जाने दो और तुम पीछे हो जाओ ! पुत्र बोला—पिता जी ! क्षत्रिय का यह धर्म है कि युद्धक्षेत्र में पीछे पग न देना । मैं क्षत्रिय हूँ, साधु हूँ और तपस्वी भी हूँ । इसलिए वीरतापूर्वक कर्मों से युद्ध करने का समय आया है । मैं समभाव से उपसर्ग को सहकर मोक्ष को साधूंगा । आप अपने पुत्र का वीरत्व देखिये । इतना कहकर मुनि ध्यान लगा कर खड़े हो गये । अब वह बाघिनी पूर्व वैर के कारण मुनि (अपने पुत्र) पर टूट पड़ी । नखों से कोमल चमड़ी को विदार-विदार कर लोही पीने लगी ।

सुकोसल मुनि एकत्व भावना में लीन बने हुए सोचते हैं, देह से मैं भिन्न हूँ । देह जड़ है, मैं चेतन हूँ । देह विनाशशील है, मैं अविनाशी हूँ । देह के टुकड़े हो सकते हैं, मैं अखण्ड हूँ । देह को बुढ़ापा आता है, मैं अजर

भी अब तेरा घर में रहना इन्हे भारी लगेगा अरे ! अब तो इस शरीर को छूना भी पाप मानेंगे यह अच्छूत हो जाता है। देख ले, तेरे बिना इस शरीर का यह मूल्य है। ऐसे संसार से शीघ्र निवृत्त हो ।

हे जीव ! मात्र अपने एकान्त सुख स्वभाव को भुलाकर ही तू इन शुभा-शुभ कर्माधीन विकारों में अनुरागी तथा अरुचिकर सामग्री में खेद खिन्न बना है। अब विवेकी बन कर इस राग द्वेषात्मक परिणतिसे मुक्त होकर परमानन्द प्राप्त कर। हे जीव ! इष्ट अनिष्ट संयोगों में तू आर्त्तध्यान रौद्र-ध्यान करता है। उस आर्त्तध्यानके चार पाए-यानी प्रकार हैं

:—:—:

आर्त्तध्यान के चार पाए

- १—संयोगार्त्तध्यान, २—इष्टवियोगार्त्तध्यान,
३—चिन्तार्त्तध्यान, ४—भोगार्त्तनिदानार्त्तध्यान ।

संयोगार्त्तध्यान—

अग्नि, जल, विष, के संसर्ग से शस्त्र, तलवार, तोप, बन्दूक, कटार के प्रहार से । बाघ, शेर, सर्प के स्पर्श से आक्रमण से, जलचर, मगर, गेंडादि की पकड़ से उत्पन्न भयसे, शत्रुओं के उपद्रव से, राजक्रोप से द्रुष्टजन सम्पर्क से, धन सम्पत्ति के नष्ट होने से, दारिद्र्य से पीड़ित संयोग से दुःखार्त्तचित्त की एकाग्रता ।

इष्टवियोगार्त्त ध्यान—

धन, ऐश्वर्य, स्त्री-पुत्रादि के वियोग से बन्धु-बान्धवों के मरण से, सौभाग्य, महत्ता के भ्रंश से, रुचिकर, मनोज्ञ, आशापूर्ण सम्बन्ध भंग से । मोह मुग्ध दशा में भय-भ्रान्त हाय, कलाप करते हुए शोकार्त्त परिणाम ।

चिन्तार्त्तध्यान—

महाव्याधि, श्वास, खांसी, भगंदर, पेटशूल, कोढ़,

निर्विकारी संयमी को जो सुख उपलब्ध भाव में प्राप्त होता है, वह सुख इन्द्र को भी दुर्लभ है।

जिस समय विकारमुक्त होकर निजत्व के अज्ञान के विलय करता है उस समय मिथ्यात्व मुक्त होकर निर्वाण पथ पर अग्रसर होता है जब तक निजत्व का अज्ञान मौजूद है तबतक जप, तप, संयमसाधनाएँ परमपद की हेतु नहीं बल्कि संसार परिभ्रमण का कारण मात्र है।

हे पथिक ! जब तक तू अपने आप को भूलकर चौरासी में भटक रहा है, तब तक चाहे जितना धीर-वीर पराक्रमी मुनि बन कर व्यवहार संयम का पालन कर, किन्तु मुक्ति नहीं मिलने की। द्रव्यलिंगी भावलिंग के अभाव में सर्वथा निष्परिग्रही होकर एकान्त हिमालय कन्दग में अथवा निर्जन तटिनी तट पर चाहे जितना तप करे फिर भी कर्म पास तोड़ने असफल ही रहेगा। उसका सारा का सारा साधन संसार भ्रमण का कारण होगा। अतः हे चेतन अपनी लब्धि की रक्षा कर शान्त रस चख। ताकि परमपद प्राप्त हो।

हे चेतन ! भले, सुन्दर शुभ शरीर, मनोहर रूप, अच्छे ये-अच्छा संयोग मिल जाय, किन्तु जिसे अपने आप के

अस्तित्व का ज्ञान नहीं, वह बहिरात्मा ही है। मोहनिद्रा में पड़े प्राणी को आत्मानन्द की अनुभूति कहां पड़ी है ? जिस समय मोह निद्रा टूटेगी आत्म-ज्ञान होगा और ऐसा समय में आएगा कि ये विषय विकार, शरीर सम्बन्ध मुझे बंधनरूप है, महान बेड़ियां हैं, न जाने कब इनसे मुक्ति मिलेगी तभी आत्मानन्द की अनुभूति उपलब्ध होगी ।

रे मन ! जिस सुख, धन, वैभव, राज्य-सम्पदा के लिये पिता-पुत्र और पुत्र-पिता की हत्या तक करने पर उतारू हो जाय ऐसे निकृष्टतम संस्मरी सुखों के भूलभुलैये में फंसा तू स्वयं यमराज की सबल दाढ़ों में दबोचा पड़ा है। ये हलाहल विषय-विष . जिनके लिये क्यों तू अपना अमृत भण्डार लुटा रहा है ? हे परस्वभाव रक्त ! तू क्यों नहीं जान लेता कि इन पुत्र, बन्धु-बान्धव, इष्टवर्ग के सम्पर्क में किसी ने भी सुख नहीं पाया है। अरे ! जबतक स्वार्थ-की पूर्ति होती है ये प्रेमी बने फिरते हैं, जिस दिन स्वार्थ पूर्ति करने में तू असमर्थ हो जायगा इन्हें दुश्मन बनते देर नहीं। यदि तू अभी चल बसा तो ये प्रिय निकट सम्बन्धी तेरे इस शरीर को श्मशान में ले जा कर फूँक आयेगे। एक क्षण

क्षणों वाला, आर्त्तध्यानति दुर्गत का हेतु है । अतः मनीषी को इसका त्याग कर ही देना चाहिये ।

विपरीत बुद्धिवश ही जीव रौद्रध्यान करता है । दुष्ट परणामी, दुष्ट चिन्तन वाला जीव रौद्रध्यानी कहाता है । इसके भी चार पाए हैं ।

रौद्रध्यान के चार पाए

१—हिसानुबंधी रौद्रध्यान, २—मृषानुबंधी रौद्रध्यान ३—चौर्यानुबंधी रौद्रध्यान, ४—परिग्रह--संरक्षणानुबंधी रौद्रध्यान

१--हिसानुबंधी रौद्रध्यान—

किसी भी प्राणी को बध किया बंधन में देख कर खुश होना । छोटी जगह में किल-बिलाते अनेक प्राणियों को दुस्खार्त्त बिल-बिलाते देखकर खुश होना । तमाशा देखने जैसा मनोरंजन मानना । स्वयं किसी को मारना-मरवाना

मारनेवाले की प्रशंसा करना, शाबासी देना । दयाहीन, मदोन्मत्त पापमतिपूर्ण, हिंसादि कार्यों में कुशल, नास्तिक, सदैव मारने व मरवाने की घात में ही लगे रहना । पापोपदेशी मारने-मरवाने में ही सुख माननेवाला । ऐसों का ही संग चाहनेवाला, कोई शूरवीर का संग मिल जाय तो मैं इन सारे जीवों को एक ही साथ खत्म कर डालूँ, इनकी चटनी बना दूँ, इनका बलिदान कर ब्राह्मण देव-दैवी कुल गुरुओं को प्रसन्न करूँ । मेरी कीर्ति होगी, इसीसे मुझे शान्ति मिल सकेगी है । तभी मेरा जीवन सफल है । इत्यादि महारौद्र परिणाम, जिससे कि दुर्गति प्राप्त हो, ऐसी एकाग्रता को हिंसानुबंधी रौद्रध्यान कहते हैं ।

२ - मृषानुबंधी रौद्रध्यान —

असत्य भाषण, अनर्थकारी मनः परिणाम, पाप मल से मलिन हृदय, दुष्ट परिणाम । वंचक, झूठा, छली, प्रपंचपूर्ण युक्ति प्रयुक्तियों से नए शास्त्रों का विधान कर, अथवा अपनी इच्छानुसार अर्थ निकाल कर, दयाहीन धर्म मार्ग का प्रवर्तन करे । धर्म की आड़ लेकर निवध विषय भोगों का सेवन करे । मायाधर से भौलैमाले सरल भद्र प्रकृति लोगों की

अतिसार, ज्वर, पित्तप्रकोप श्लेष्मविकार, गठिया, संधि-
वात आदि भयंकर रोगों से उत्पन्न मरणान्त वेदनावश
आकुल-व्याकुलता । हाय ! स्वप्न में भी कल्पना नहीं की
थी कि ऐसी वेदना भोगनी पड़ेगी ? इससे कैसे जल्दी मुक्त
बनूं ? क्या करूं ? कौन-सी दवा लूं ? आदि चिन्तामें
ही अहर्निश व्यस्त परिणाम ।

भोगार्त्त-निदानार्त्त-ध्यान—

मुझे देव-देवेन्द्र, सम्राट, चक्रवर्ती की विलास सम्पदा
कब प्राप्त होगी ? त्रैलोक्य में श्रेष्ठ ऐसा सुभग रूप यौवन
कैसे प्राप्त हो ? मेरे सब शत्रुओं का विनाश कब होगा ?
न जाने कब सुन्दर-स्त्रीसंग से खूब तृप्त होकर भोग
भोगूंगा ? सब शत्रुओं को नष्ट कर कब निशंक विश्व
पर राज्य करूंगा ? देवांगनाएं कब मेरे समक्ष नृत्य करेगी ?
वगैरह विकल्पों में चित्त की एकाग्रता ।

तप, संयम, इन्द्रियादि दमन, के प्रतिफल में इन्द्रादि
पदवी की वांछा, मेरे तप के प्रभाव से मेरे शत्रु का नाश हो
जाय । उसका पूरा कुल खत्म हो जाय, कोईनाम लेवा
न बचे, तभी मुझे शान्ति होगी ! इस प्रकार क्रोधाधीन

होकर, तपादि के प्रतिदान में संसार वृद्धि करनेवाले, महा दुख के कारणरूप, संकल्प विकल्प करना । इस प्रकार के निदान करने से जीव प्रतिपल दुख दावानल में जलता ही रहता है ।

हे जीव ! बिना पुण्य किसी के भी मनोरथ सिद्ध नहीं होते, तू मिथ्या विकल्प मत कर ।

अपथ्य सेवन से जैसे रोग उग्र हो जाता है, वैसे ही निदान करने से सुकृत नष्ट हो कर, जन्म-मरण रूप व्याधि बढ़ जाती है ।

इस आर्त्तध्यान रूप व्याधि की उपस्थिति की सम्भावना, मिथ्यात्व से लेकर पंचम देशविरतीय गुणस्थान तक रहती है । आगे कृष्ण, नील, कापोत लेख्या के कारण, छठे गुणस्थान में भी आर्त्तध्यान मुनि को उपसर्ग कर सकता है । आर्त्तध्यान में यदि आयुबंध हो जाय तो गुणस्थानों से पतित होकर तिर्यञ्चगति में आता है ।

यदि अन्तर्मुहूर्त मात्र जीव को अर्त्तध्यान हो तो उसकी दशा सशंक सी हो जाती है । शोक, पीड़ा, भय, प्रमाद, कलह, भ्रम, उन्माद, अतिनिद्रा, कषाय, कामपीड़ा, ऐसे

कल्पना करता है, चाप से बाण से वैरियों के हृदय वेध डालूं, ग्राम नगर जलाकर लूटकर, सारी सम्पदा अपने अधिकार में करलूं ? अपने पराक्रम से अनेक कुल संहार कर, गढ़ किले ढाह कर, समुद्र खाइयां पार कर, जहां भी मेरे शत्रु हैं, उन्हें जीतकर, हीना प्रताप फैलाऊं, राजा बन जाऊं। परिग्रह प्राप्ति लिए अनेक विकल्प करता है।

रोगभोगों एक अंग को पीडित करता है, किन्तु यह लालसा तो सर्वांग वेदना करती है। धन के लिए अपने परिणामों का, भावनाओं का, अन्तरध्वनि का गला घोंटता है। कृष्ण लेश्या वाले जीव को रौद्रध्यान होता है। परिणाम में नरक प्राप्त होता है। यह ध्यान पंचम गुणस्थान पर्यन्त रह सकता है।

रौद्रध्यानी का वचन उग्र, तीक्ष्ण, कठोर, भयोत्पदाक होता है। हत्या उसके बाएं हाथ का खेल है। आंखें क्रोध के अंगारे उछालती रहती हैं। शरीर कांपता ही रहता है।

हे चिदानन्द ? आर्त्त रौद्रध्यानाग्नि से धर्म कल्पतरु झुलस जाता है। इन्द्र; चक्रवर्ती, तीर्थकर पद देनेवाले धर्म ध्यान का आलम्बन लेना चाहिए।

जो मूर्ख होते हैं वे ही परिग्रह विषय विकार सामग्री देखकर खुश होते हैं। परिग्रहधारियों को सुखी मानना वज्राग्नि को शीतल मानने जैसी मूर्खता है। इन्द्रिय जन्य विषय भोगों में आनन्द मनाना काल कूट विष पानकर अमर होने की लालसा जैसी भूल है। शरीर को ^{नोरि}मर मानना चपला की कोंध में रत्न की परीक्षा जैसा साहस है जीव ! भले अज्ञानाधीन होकर इन नश्वर सुखों को रत्नगीय-मनोज्ञ मान, परंतु वास्तव में ये इन्द्रजाल जैसे मायावी ही हैं। स्वप्न-वत् मिथ्या हैं। आर्त्त और रौद्र ध्यान अनादिकाल से जीव के साथ लगे हैं इनका फल दुर्गति ही है। यह स्वयं पापवृक्ष है भला इस के फल मधुर कहां से होंगे ? अतः सम्यग्दर्शन, ज्ञान पूर्वक विचार कर, आर्त्त-रौद्र परिणामों से मुक्त होजा।

श्रद्धा का अनुचित लाभ उठा कर, उन्हें कुमार्ग पर चढ़ा कर, भ्रम में डाल कर, विश्वास जमा कर; अपना उल्लू-सीधा करे। भोग-मार्ग में भी धर्म है, ऐसी रहस्यपूर्ण भाषा से अपना मनोभिलषित प्राप्त करे। असत्य मार्ग से भोग-भोगने में शंकित न हो, लोकलाज भी जिसे नहीं। मद्य, मांस, पर-स्त्री संग में रत। अनुचित सम्बन्ध गांठनेवाला। धन ठग कर भोगोपभोग सम्पदा पाने की अभिलाषा। ऐसी बोली बोले जिस से स्वयं को सुख और दूसरों को कष्ट हो। ऐसी अनर्थमय दुःखप्रद विडम्बना वाला विकल्प 'मृषानु-बन्धी रौद्र ध्यान कहाता है।

३—चौर्यानुबन्धी रौद्रध्यान :—

महा दुष्ट पल्लीपति, भयंकर डाकू, लुटेरे, इनके दल को, सरदार को, साथ लेकर निर्दोष प्रजा को लूटूँगा। इन लोगों को धन ऐश्वर्य, सुख भोगते बहुत समय हो गया “अब इनके दिन पूरे हो गए, एक न एक दिन मैं अवश्य इनके धन का मालिक बनके रहूँगा। इनके ये हाथी, घोड़े, दास, -दासी, सुन्दरी कोमलांगी स्त्रियां एक दिन जरूर छीन कर सुखी बनूँगा। चोर लुटेरों के सहयोग से यह सारी

श्रीमंताई मेरे चरणों तले होगी। ज्यों-ज्यों धनी, मानी, गुणवंतों को देखता है, त्यों-त्यों मन ही मन ईर्ष्या, द्वेष डाह से जलधुन कर खाक हो जाता है। परसुख असहिष्णुता से सतत पीडित रहता है। कैसे इस सुख को चुराकर अपना बनाऊँ इसी मनोरथ में गर्क चित्त चौर्यानुबंधी रौद्रध्यान करता है।

४—परिग्रह संरक्षणानुबंधी रौद्रध्यानः—

घोर आरंभ समारंभ से परिग्रह संग्रह करूँ। जीव हिंसा करके भी धन को बचाकर किसी भी उपाय से हो मैं धनवान बनूँ। कोई मेरा धन चुरा न जाय; ऐसी शंका से सभी को चोर समझे, धन के मामले में अपने स्त्री, पुत्रादि का भी विश्वास न करे, अत्यधिक लोभाभिभूत स्वयं अन्यो को ठगता है, अपने जैसा सभी को ठग मानता है। हाथी, घोड़े रथ, दास, दासी, स्वर्ण रत्न धन, धान्यादि असीम परिग्रह को देख-देख फूला नहीं समाता, ऐसा मानता है मानो स्वयं साक्षात् परमात्मा ही हो। मेरे जैसा संसार में कोई नहीं, जो हूँ मैं ही हूँ। इस प्रकार गर्वोन्मत्त न करने योग्य आचरण करता है।

में गंडासी से पकड़ कर जल में डुबा देने पर वह स्वभाविकता की ओर अग्सर होता है फिर भी जल में डालने के साथ एक दम ही न तो वह शीतल ही हो जाता है, और न चिकना व कठोर ही बनता है। कुछ समय जल-निवास करने के पश्चात् ही उसमें सहजता आती है। उसी प्रकार सुखपिण्ड आत्मा, मोहाधीन, मिथ्यात्व, अचिरति आदि अग्नि में दहकता है। उसे सम्यग् दर्शन, चारित्र्य रूप गंडासी से पकड़ कर उपशम रूप ज्ञानजल में डुबा देने पर भी एका-एक मोहजन्य ताप से मुक्त नहीं हो पाता-धीरे-धीरे ही स्वस्थ होता है।

हे जीव, तू व्यर्थ ही अनादिकाल से मिथ्यात्व, अचिरति आदि तापों से तपता रहा, किन्तु, कोई चिन्ता नहीं! तेरे जैसी ही एक नहीं, अनेक आत्माएँ, इसी उपशम जल में डुबकी लगाकर, शान्त हुई हैं। मात्र एक बार मोहनिद्रा से जागृत होजा ! फिर अपने सहज शान्तरस में अवश्य समाधि प्राप्त करेगा।

हे चेतन तू अपने से भिन्न जो भी पदार्थ देखता है वे सभी चेतनाशून्य हैं। उन्हें सुखानुभव नहीं होता। लेकिन

जो ज्ञाता दृष्टा सुखानुभूति का अनुभव करने वाला है वह चर्मदृष्ट से दिखाई नहीं देता फिर भी उसके अभाव में जगत निष्क्रिय है। रूपी पदार्थ नाना प्रकार के विकारों से युक्त है, शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श जिसके गुण हैं, और तू ज्ञान दर्शनादि संयुक्त है तेरा इसका प्रेम कैसा ? इस जड में तो प्रेमानुभूति ही नहीं है और न इसे निज पर का ज्ञान ही है। फिर यह तेरे अनन्त गुणों से कैसे परिचित हो सकता है ? फिर प्रेम कैसा ! जिस प्रकार तू सर्वस्व भुलाकर पुद्गल पर आशक्त हैं उसी प्रकार यदि यह भी तेरे पर अनुरक्त हो तब तो इस प्रेम में मजा है शोभा भी है, वरना जड और चेतन की जीवित और मृतक की कैसी प्रीति ? सती का प्रेम मूढ़ नहीं जानता, वैसे तेरा प्यार यह जड नहीं समझता ।

हे जीव ! संतोष से विश्वास कर कि तू अकेला है यह सब संसर मिथ्या है, ऐसा जानने वाला ही स्वभावरस में रमण कर ज्ञान्तरस आस्वादन करता है। हे चेतन। आज पर्यन्त तू अपने गुणों से, महिमा से अनभिज्ञ रहकर बाह्य सुखों में भटकता रहा है। मन में विकल्प करता रहा कि कौन से मार्ग को ग्रहण करूँ ? किस क्रिया से मुक्ति होगी। मिथ्या

तीन लिंग

हे चेतन ! रूपी पदार्थों का द्रव्य दृष्टि से अवलोकन करने पर लिंग तीन प्रकार के दृष्टि गोचर होते हैं। इन्हीं लिंगों में विश्वास करके तू अपने पराये के मोहजाल में आबद्ध होता है। किंतु जो लोग लिंगजाल से मुक्त भाव-दृष्टि से आत्म स्वरूप देखते हैं, वे लैंगिक विषय विकारों से अनाशक्त रहते हैं। वह आत्मा को शब्दादि विषय से पर देखते हैं। लिंग दो प्रकार के हैं। १भावलिंग २द्रव्यलिंग

१—भावलिंग

भावलिंग का स्वरूप अम्यन्तर परिणामों के आधार पर निश्चित किया जाता है। (परमात्मा) पुरुषलिंग (अन्तरात्मा स्त्रीलिंग बहिरात्मा: नपुंश लिंग

२—द्रव्य लिंग...

द्रव्य दृष्टि से दिखाई देने वाले अवयवों की भिन्नता से जो भेद पुरुष, स्त्री, नपुंसक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं वे द्रव्यलिंग।

द्रव्य लिंग की प्राप्ति का आधार भाव लिंग है। एतद्... यों

माया प्रपंच रहित, सरल-शुद्ध चित्त, दयालु, कोमल हृदय; संयम की भावना शुभ लेख्या, ऐसे भावोंसे “पुरुषलिंग” का बंध होता है ।

मायाचार, अनाचार, कुटिलता करके भी सच्चे-सीधे बने रहना, मुख से मीठी-मीठी बातें करना, हृदय में सदा घात लगाए रहना । इत्यादि परिणामों से “स्त्रीवेद” का बंध होता है ।

महाक्लेश, कंकास, कलह, आर्त्त-रौद्र परिणाम, निरंतर कामपीडित मन से ‘नपुंसक वेद’ का बंध होता है ।

हे जीव ! तू अरूपी है, अनादि सिद्ध है, वचनातीत अगोचर है । सर्व विकारमुक्त ऐसा अपना लिंग जानकर लैङ्गिक विकार तजकर आत्म प्रेम जागृत कर शांतरस चख ।

हे चिदानन्द ! अनादिकाल से तू मिथ्यात्व, अविरति रूप भ्रममें पडा है अतः एकाएक इस अनादि पाप मूल

अनादि पाप मूल से मुक्त होना कठिन है । क्योंकि जिस प्रकार गोलें को अग्नि में तपा कर सूर्य अग्नि जैसा ही बना लेते हैं, उसी प्रकार तू भी अनादि पाप मूल से मुक्त होना कठिन है । क्योंकि जिस प्रकार गोलें को अग्नि में तपा कर सूर्य अग्नि जैसा ही बना लेते हैं, उसी प्रकार तू भी अनादि पाप मूल से मुक्त होना कठिन है ।

इससे सेठ वगैरे सुसमा के शव को देखकर रोते-रोते प्रर झूट आये। सुसमा के मुँह के लोही से चोर का सारा शरीर पुत गया। दौड़ते-दौड़ते चोर का सारा शरीर सिथिल हो गया। जिस सुसमा को पाने की तीव्र अभिलाषा थी उसी का सिर हाथ से काटना पड़ा, इसलिये मन भी ग्लानि से भर गया। भय तो था ही, कि सेठ वगैरे पीछे आ रहे होंगे। इन कारणों से घबराहट का कोई पार नहीं था। इतने ही में एक वृक्ष के नीचे एक मुनि को कायोत्सर्ग करते हुये देखकर उनके पास आकर कहने लगा, हे मुनि ! जल्दी से धर्मोपदेश दीजिये, नहीं तो देखिये, इस तलवार से इस कन्या के सिर की तरह तुम्हारा ही गला उतार देता हूँ। मुनिने चोर का रौद्ररूप देखेकर सोचा, कि धर्म सुनने की इतनी त्वरता योग्यता को व्यक्त करती है। यथा इसे कोई उग्र भय अथवा आवश्यक कार्य है, अतः इतनी त्वरता है। उपदेश लेने का तरीका भी तलवार से बता रहा है। इसलिये ध्यान को छोड़ कर धर्म का अत्यंत संक्षेप रूप करते हुये बोले—भाई ! १ उपशम-२विवेक और ३संवर ही धर्म है। मुनिजी तो इतना सा, परन्तु सारभूत उपदेश देकर नमोक्कार बोलते हुये जंघा पर हाथ रख कर आकाश मार्ग से उड़ गये।

पापी से धर्मी—अब चिलातीपुत्र सोचने लगा कि इन तीन पदों का क्या अर्थ हो सकता है। फिर समझ में आया कि उपशम का अर्थ है क्रोध की शान्ति। मेरे हाथ में तो क्रोध का प्रतीक खड्ग है। यदि मुझे उपशम चाहिये तो खड्ग को फेंकना होगा। विवेक का अर्थ है अच्छे कामों में प्रवृत्ति और बुरे कामों से निवृत्ति। मेरे एक हाथ में जो सुसमा का सिर है, यह दुष्टता का सूचक है। इसे भी छोड़ना होगा। इन दोनों को बड़ी दूर फेंक दिया। संवर का अर्थ है रोकना। मैं किसे रोकूँ ? फिर पांच इन्द्रियाँ और मन को रोकने का ध्यान आगया। यों सोचकर जैसे साधु खड़े थे, ठीक उसी प्रकार उसी स्थान पर ध्यान लगाकर खड़े

हो गया। तथा यह नियम कर लिया कि जब तक इस स्त्री-हत्या की स्मृति भी मेरे मन में रहेगी, तब तक कायोत्सर्ग करके खड़ा रहूंगा। अर्थात् तब तक मेरे शरीर को बोसिराता हूँ। इस प्रकार भावनाओं में साधुपन आने से चोर, जुआरी, शराबी, पल्लीपति वगैरे पापसूचक विगेषण हटकर मुनि चिलातीपुत्र बन गया। मुनिजी का शरीर सुसमा के रुधिर से पुता हुआ था, इसलिये उसकी गंध से बिलों में से निकल-निकल कर असंख्य चीटियाँ मुनि के शरीर को काटने लग गईं। काटा भी तो इतना काटा कि पैरों की ओर से काटती-२ मस्तक की तफ सुराक बनाकर निकलने का मार्ग बना डाला। सारा शरीर चलनी की तरह विंध गया इतनी उग्र वेदना होते हुये भी, अपनी प्रतिज्ञा के पक्के, ध्यान और योग में लीन, आत्मा और शरीर की भिन्नता विचारते हुए श्री चिलाती मुनि मेरु पर्वत की तरह अडोल ही खड़े रहे। इस अवस्था में केवल अढाई दिन की अल्प अवधि में ही आयुष्य समाप्त करके आठवें स्वर्ग में देवता बन गये।

सार—इस कहानी में एकत्व-भावना और सत्त्व-भावना साकार रूप से पाठकों के सामने आरही है।



(१४) श्री अनाथी मुनि

(ढा० ४ गा० १७)

कौशांबी नगरी के धनसंचय नामक इम्य-सेठ के आप सुपुत्र थे । आप, माता, पिता, भाई, बहन, पत्नी आदि स्वजन समूह की ओर से भी महान सुखी कहलाते थे । किन्तु एक दिन आप की आँखों में ऐसी असह्य वेदना उत्पन्न हुई, जिससे सारा शारीर भार स्वरूप प्रतीत होने लगा । पिताने अपने लाडले लड़के को, स्वस्थ करने के हेतु उपचार तथा सेवा करवाने में कोई कमी नहीं उठा रखी । अच्छे-अच्छे अनुभवी चिकित्सक बुलावाये गये, पानी की नाई पैसा बहाया गया, परन्तु शान्ति की बजाय पीडा तो उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली । दिन की भूख और रात की नींद हराम हो गई । एक दिन आपने सोचा, पीडा का मूल कारण कर्म है । कारण मिटने से तज्जन्य कार्य स्वयं समाप्त होजायगा । अतः मैं यह संकल्प करता हूँ । यदि मेरी यह वेदना मिटकर आज रात को मुझे नींद आजाय, तो मैं संसार का परित्याग करके चारित्र्य ग्रहण कर लूंगा । संयोग ऐसा हुआ, कि वेदना समाप्त हो कर रात को नींद आगई । फिर आपने सूर्योदय होते ही परिवार के सम्मुख अपना निश्चय प्रगट करके दीक्षा लेली ।

राजा श्रेणिक भी अनाथ— फिर श्री अनाथी मुनि विहार करते-राजगृही नगरी के मंडीकुक्षि नामक उद्यान में आ ठहरे । मगधाधीश ने जब इन मुनि जी को देखा, तब उनके रूप और लावण्य पर विस्मित होता हुआ घोड़े से उतर कर पूछने लगा कि, भगवन् ! आप कौन हैं ?

मुनि ने कहा—मैं अनाथी नामक निग्रंथ हूँ ।

राज बोला—आप जैसे व्यक्तियों का कोई नाथ न हो, तो मैं आप का नाथ बन सकता हूँ ।

मुनि-बोले—राजा ! जब तू आप ही अनाथ है, तब मेरा नाथ कैसे हो सकता है ।

राजा बोला—आप असत्य तो नहीं बोल रहे हैं न ? आप को ज्ञात रहे मैंने मगध नरेश हूँ । मेरे पास करोड़ों की संपत्ति है और लाखों का नाथ हूँ ।

मुनि बोले—मेरे कहे हुये अनाथ शब्द का आशय तुम अभी तक नहीं समझ सके हो ।

राजा बोला—कृपया समझाइये ।

मुनि ने अपना जीवन वृत्तान्त सुनाते हुये कहा कि धन, संपत्ति, परिवार, माता, पिता, भाई, बहन, पत्नी के होते हुये भी मेरी अक्षि-वेदना को कोई नहीं मिटा सका । यह मेरा अनाथीपन था ! तब से मैंने समझा कि सारे प्राणी अनाथ हैं । कोई किसी का नाथ नहीं । यदि कोई नाथ है, तो अपने आप का नाथ अपनी आत्मा ही है । जो संयमी है, इन्द्रियों के विषय भोगों का दास नहीं, बल्कि उनको जीतने वाला है, सर्वजीवों को अभय दाता है, मेरी व्याख्या के अनुसार वह सच्चा नाथ है । राजन् ! अब सोचलो ! तुम नाथ हो, या अनाथ । मुनि के इस उपदेश का ऐसा असर हुआ कि राजा का नाथ बनने का मोह नष्ट होते ही अंतर की आँखें खुल गई । अब राजा श्रेणिक श्री अनाथी मुनि का उपासक बन गया ।

सारः—कोई किसी का नाथ नहीं है, यह अन्यत्व-भावना इस कथा में बिलकुल स्पष्ट है ।

इति

(१५) भरत चक्रवर्ती

(ढा०५ गा० १६,)

अयोध्या नगरी में श्री ऋषभनाथ भगवान के पुत्र श्री भरत चक्रवर्ती हुये । उनकी पच्चीस हजार देवता और बत्तीस हजार मुकुट बंधराजा सेवा बजातोथे । उनके चौरासी लाख रथ, तथा छिन्नवे करोड़ पैदल सेना थी । और एक लाख छिन्नवे हजार रानियाँ थी । इस प्रकार छः खंड की ऋद्धि और विपुल भोगों को भोगते हुये भी अंतरात्मा से विरक्त और अनासक्त थे । एक दिन का प्रसंग है कि चक्रवर्ती आरीसा-भवन में बैठे-बैठे अपनी सुन्दरता निरख रहे थे । इतने में एक अंगुली से अंगूठी के निकल जाने पर अन्य अंगुलियों के सामने वह अंगुली शोभा-विहीन नजर आने लगी । इस की पुष्टि के लिये अपने एक-एक करके सारे आभूषण उतार डाले । फिर सोचा, वस्त्र भी पुद्गल, गहने भी पुद्गल, शरीर भी पुद्गल, और क्या संसार का सारा खेल ही पुद्गलमय और क्षणभंगुर है । यों आरीसाभवन में ही अनित्य-भावना के बल से नित्य और शाश्वत आत्म तत्व को पाते ही केवल-ज्ञान हो गया ।

:—

(१६) इलापुत्र

(ढा०५ गा० १६,)

इलावर्धन शहर में धनदत्त नाम का सेठ था। इलादेवी की आराधना से उसके एक पुत्र हुआ, अतः उसका नाम इलापुत्र रखा। एक दिन वह लड़का अपने मित्रों के साथ नाटक देखने को चला गया। वहाँ पर वह नटराज की लड़की को देखकर उस पर मुग्ध होगया। घर आकर माता पितासे कहने लगा कि मैं नटकन्या के साथ विवाह करना चाहता हूँ। इस कार्य के लिये माता पिता के इन्कार होने पर इसने लड़की के पिता को बुलाकर अपनी राम-कहानी सुनादी वह बोला यदि तुम घर छोड़कर हमारी टोली में आ मिलो, और नाट्यकला सीखलो तो मैं मेरी न्यात की अनुमति से मेरी कन्या तुम्हें दे सकता हूँ। इलापुत्र सब कुछ स्वीकार करके अंत में एक कुशल नाटककार हो गया, परन्तु बारह वर्ष व्यतीत होने पर भी अभी तक विवाह की कोई बातचीत ही नहीं हो रही है। एक दिन इलापुत्र के पूछने पर नटराज ने कहा, तुम अपना अध्यक्षाता में एक नाटक सम्पादन कर एक लाख रुपये ले आओ। फिर विवाह हो जायेगा। अब नाटक का सारा साज बाज लेकर इलापुत्र विवाह की आशा से धन कमाने को वह चल पड़ा।

नया नाटक—एक राजा की आज्ञा से राजमहल के सामने बड़े मैदान में नाटक की तैयारी होने लगी। एक बहुत लंबा वांस गड़ा हुआ, है रस्सियाँ तनी हुई है, वांस के ऊपर लकड़ी का एक फट्टा रखा है, फट्टे पर लोहें की कील है। उस कील पर अपनी नाभि टिकाकर एक हाथ में तलवार और एक हाथ में ढाल

लेकर इलापुत्र नये-नये खेल दिखा रहा है। नीचे खड़ी नटराज को लड़की ढोल बजा रही है। हजारों की संख्या में दर्शक लोग बड़ी तन्मयता से देख रहे हैं राजा और रानी भी महल के झरोखे में बैठे खेल देख रहे हैं। राजा का ध्यान उस नट कन्या पर जाते ही वह उसे पाने की और इलापुत्र के मरजाने की मन ही मन कामना करने लगा। तथा एक बार और, एक बार और, कह कह कर राजा ने इलापुत्र को तीन बार वांस पर चढाकर खेल देखे। परन्तु इलापुत्र सकुशल नीचे उतर आया। अब धन की आशा से राजा का मुंह देखने लगा। तब राजा ने कहा, एक खेल और दिखलाओ। इलापुत्र तीन बार खेल दिखाने से इतना थक गया था, कि अब मन और शरीर दोनों ने उत्तर दे दिया। सोचा, यह कंजूस राजा कुछ देना नहीं चाहता, प्रत्युत मुझे बार-बार वांस पर चढाकर, नीचे गिरकर मरजाने से मेरी भावी पत्नी इस नटकन्या को हड़पना चाहता है। धिक्कार है इस कामी नरेश को। किन्तु नटकन्या ने अपने भावी पति की मनो भावना को भाँपते हुये कहा, घबराइये मत ! चढजाइये ! सफलता आपके चरण चूमेगी। इस प्रकार अपनी भावी पत्नी द्वारा प्रेरणा पाकर इलापुत्र चौथीबार खेल करने को वांस पर चढ ही गया।

वांस पर केवलज्ञान—वांस इतना ऊँचा था, कि आस पास के घरों का भीतरी भाग आसानी से नजर आरहा था। एक घर में एक अत्यन्त रूपवती नवयौवना सेठानी अपने आंगन में भिक्षार्थ आये हुये मुनिके सामने मोदकों का थाल भर कर खड़ी हुई कह रही है। भगवन् ! लीजिये। भगवन् ! कृपा करो। किन्तु मुनि की नजर अपनी संयमी-भावना के अनुसार आहार की ओर है, स्त्री सौंदर्य की ओर कोई लक्ष्य ही नहीं है। इस प्रसंग को देखकर नाटक करते ही इलापुत्र ने सोचा धन्य है इस मुनिजी को। जो कि एक अत्यन्त रूपवती स्त्री के

सम्मुख आँख उठाकर भी नहीं देखते । जब कि मैं इस नट कन्या पर मुग्ध हुआ क्या नहीं कर रहा हूँ धिक्कार है मेरी वासनावृत्ति को । इन विषय विकारों ने ही तो मुझे नट बनाकर वांस पर चक्कर लगाने को बाध्य किया है । इन विषयों से मेरा क्या संबंध है । ये सारे विषय अनित्य, अशाश्वत और अशुचिमय पौद्गलिक पदार्थ हैं । मैं तो एक, नित्य, अखंड, अजर, अमर, अबिनाशी, सिद्ध स्वरूप आत्मा हूँ । आत्मभावों के सिवाय विभावों का कर्त्ता तथा भोक्ता मैं नहीं हूँ । मैं तो मेरे शुद्धस्वभाव का धनी हूँ । इलापुत्र स्थूल शरीर से तो वांसपर चक्कर लगता हुआ लोगों को नजर आरहा है और अंतर में अन्यत्व भावना का वेग इतना बड़ा कि वांस पर ही केवलज्ञान हो गया । फिर वांस से नीचे उतर कर जनता के सामने अपना जीवन वृत्त मुनाने से राजा-रानी और उस नटकन्या ने आत्म ज्ञान पाकर संसार का परित्याग कर दिया । इलापुत्र मुनि की मुक्ति हो चुकी ।

सार—वांस पर खेल दिखलातेर केवलज्ञान का होना-अन्यत्व-भावना के महान फल का सूचक है ।

इति

(१७) अमात्य तेतलीपुत्र

(ढा०५ गा० १६)

तेतलीपुर के राजा कनकरथ के अमात्य का नाम तेतलीपुत्र था । इसी शहर के मूषिका दारक सुनार की एक पोट्टिला नाम की कन्या को इसने पसन्द करके अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाया था । कालांतर से अमात्य तेतली का प्रेम पोट्टिला पर से समाप्त हो गया । उस दिन से वह उदासीन सी रहती हुई दिवान के घर आये हुये श्रमण ब्राह्मणों को दान देती हुई अपना शेष जीवन बिताने लगी । एक दिन गौचरी के लिये आई हुई जैन साध्वी को इसने फिर से पति को प्रिय बनने के लिये कोई मंत्र बतलाने को कहा । आर्या बोली, यदि तुम चाहो तो हम धर्म का उपदेश दे सकती हैं, किंतु वशीकरणादि मंत्र नहीं बतला सकती । इसने कहा, यह ही सही । तब आर्या ने श्रावकोचित ब्राह्मणों का उपदेश देकर संसार की अनित्यता तथा वैषयिक सुखों की क्षणिकता की ओर इसका ध्यान आकृष्ट कर दिया । इस उपदेश से प्रभावित होकर इसने अमात्य तेतली से साध्वी बनने की आज्ञा मांगी । तेतली बोला—तुम स्वर्ग से आकर मुझे प्रतिबोधित करने का वचन दो तो दीक्षा ले सकती हो । इसने अपना वादा पका करके सुब्रता नामकी गुरुणी के पास दीक्षा लेली । फिर गुरुणी जी की सेवा में रहते हुये इसने म्यारह अंगों का अध्ययन कर लिया । तथा अंत में अनेक प्रकार की तपस्याओं द्वारा अपने चित्त को विशुद्ध बनाकर, समाधि पूर्वक पंडित मरण करके देवता बन गई ।

अपने पति को प्रबोध— फिर अपने पूर्वजन्म के पति अमात्य तेतली को प्रतिबोध देने के लिये ऐसा किया मंत्री जब राजसभा गया, तब राजा कनकध्वज ने इसका किंचित भी सम्मान नहीं किया । इससे वह मन ही मन अनेक

प्रकार के भावी भय को सोचता हुआ उसी वक्त घर को लौट आया । वहाँ पर भी माता पिता ने तो क्या, किंतु किसी तुच्छ सेवक ने भी आज इसका कोई सत्कार नहीं किया । इस प्रकार के अपमान को देखकर मंत्री ने आत्महत्या करने के लिये विष खा लिया, परन्तु मरा नहीं। फिर गले पर छुरा चलाया, परन्तु गला कटा नहीं। फिर फांसी लेने लगा तो फंदा ही टूट गया, परन्तु मरा नहीं। फिर एक बड़ा वजनदार पत्थर गले में बांध कर पानी में डूबने गया, परन्तु मरा नहीं। फिर एक घास के ढेर में आग सुलगाकर उस में कूदा, परन्तु जला नहीं ।

हाय !! मौत भी इतनी महंगी कि आत्महत्या के लिये किये गये इतने सारे उपाय भी निष्फल चले गले । यों सोचता हुआ सिर पर हाथ रखकर बैठ गया । तब वह देवता पीट्टिला का रूप बनाकर कहने लगा; हे अमात्य तेतली ! मानो, कि सामने तो एक बड़ा गहरा खड्डा हो, दायें और बायें गाढ़ अंधकार हो, पीछे से एक मदोन्मत्त हाथी आ रहा हो, बीच में सन-सन करते हुये बाणों की वर्षा हो रही हो, ऐसी स्थिति में मानव कहां जाय और क्या करे । इसके उत्तर में दिवान बोला-जैसे भूखे को अन्न का, प्यासे को पानी का, रोगी को औषध का, थके हुये को वाहन का, सहारा होता है, ठीक उसी प्रकार जिसके चारों ओर भय हो, उसे प्रब्रज्या का सहारा है । क्योंकि प्रब्रजित व्यक्ति को किसी प्रकार का भय नहीं सताता । हे अमात्य ! जब तुम इस प्रकार जानते हो और कहते भी हो, तो तुम्हें संयम का आश्रय ले लेना ही उचित है । इतना कहकर देवता तो अंतर्धान हो गया । पीछे से अमात्य तेतली को जातिस्मरण ज्ञान होने से संयम ग्रहण करने को तत्काल तैयार हो गया । फिर संयम लेकर, शुद्धभावों द्वारा इसका पालनकर, अष्ट कर्मों को खपाकर अमात्य तेतली मुक्तिपुरी में जा विराजे ।

सार—संयम के सिवा कोई भी शरण-स्थान नहीं है । इस तरह अशरण-भावना का आदर्श स्वयं चमक उठता है ।

—:—:

ॐ

श्री देवचन्द्र जी महाराज कृत
प्रभंजना नी सज्जाय

ढाल १-पहली

“नाटकिया नी नंदनी” ए देशी

गिरि वैताढ्य ने ऊपरे-चक्रांका नयरी लो । अहो चक्रांका०
चक्रायुध राजा तिहां-जीत्या सवि वयरी लो-अहोजीत्या ॥१॥

भावार्थ-वैताढ्य पर्वत के ऊपर चक्रांका नाम की नगरी में सर्वशत्रुओं को जीत-
नेवाला चक्रायुध नाम का राजा था१

मदनलता तसु सुन्दरी-गुण शील अचंभा लो । अहोगुण ।

पुत्री तास प्रभंजना-रूपे रतिरंभा लो । अहो रूपे । २ ।

भावार्थ-उस राजा के मदनलता नामकी महारानी थी । उसके शील और गुण-
आश्चर्यकारी थे । उनकी पुत्री का नाम प्रभंजना था । वह रूप और सौन्दर्य में
रति अथवा इन्द्राणी के समान थी.....२

विद्याधर भूचर सुता बहु मिली इक पंते लो । अहो बहु ।

राधावेध मंडावियो-वर वरवा खंते लो । अहो वर । ६।

भावार्थ-प्रभंजना ने अन्य विद्याधरों एवं राजाओं की एक हजार कन्याओंके सार्थमिल
कर एक ही पति वरने के लिये राधावेध का आयोजन करवाया था । इसका अर्थ है

कि जो कोई व्यक्ति नीचे तैलकुंड में भांकता हुआ ऊपर घूमते हुये चक्र में राधा नाम की पुतली की एक आंख को बाण से वीधेगा, वह इनका पति होगा ॥३॥

कन्या एक हजार थी, प्रभंजना चाली लो । अहो प्रभं०

आर्यखंड मां आवतां, वनखंड विचाली लो । अहो वन०४।

भावार्थ—अब एक हजार कन्याओं के परिवार से प्रभंजना कुमारी चलपड़ी । जहां राधावेध का आयोजन किया हुआ था, वहां आर्य खंड में आते हुये वीच में एक वनखंड अर्थात् बाग आगया.....४

निर्ग्रन्थी सुप्रतिष्ठिता, बहु गुणणी संगे लो । अहो बहु०

साधु विहारे विचरतां, वंदे मन रंगे लो । अहो वंदे०५।

भावार्थ—वहां अनेक साध्वियों के साथ साधु धर्म का पालन करती हुई सुप्रतिष्ठिता नामकी साध्वी को देखकर वे कन्याएं बड़े उमंग से उन्हें वंदना करने लगीं५॥

आर्या पूछे एवढो, उमाहो श्यो छै लो । अहो उमाहो०

विनये कन्या वीनवे, वर वरवा इच्छै लो । अहो वर० ६।

भावार्थ—आर्यिका ने उन्हें सहज स्वभाव से पूछा, कि आज तुम्हारे चित्त पर इतनी प्रसन्नता किस बात की है । तब कन्याओं ने विनय के साथ कहा आज हम सभी सहेलियाँ अपने जीवन साथी को वरने के लिए जारही हैं । ६

ए श्यो हित जाणो तुम्हें, एथी नवी सिद्धि लो । अहो०एथी ।

विषय हलाहल विष जिहां, शी अमृत बुद्धि लो । अहो शी०७।

भावार्थ—साध्वीजी बोली, बहनों ! इसमें तुमने अपना क्या हित देखा है । इससे कौनसी सिद्धि होने वाली है । जिस में पांचों इन्द्रियों के विषय हलाहल विष है उस वैशाहिक संबंध में अमृत की कल्पना करना नितान्त म्रम है ॥७॥

भोग संग कारमा कखा, जिनराज सदाई लो । अहो जिन० ।
राग द्वेष संगे वधे, भवभ्रमण सदाई लो । अहो भव० ८

भावार्थ—श्रीजिनेश्वर देवने भोगों के संग को अस्थिर कहा है । इनके संग से राग और द्वेष की बृद्धि होती है जिससे सदा भव भ्रमण होता है ॥८॥

राजसुता कहै साच ए, जे भाखो वाणी लो । अहो जे० ।
पण ए भूल अनादिनी, किम जाये छंडाणी लो । अहो किम० ९

भावार्थ—भोगों की अस्थिरता तथा विषयों की विष तुल्यता सुनकर प्रभञ्जना बोली जो आप फर्मा रही हैं वह वास्तव में सत्य है ! परंतु इस जीवात्मा कर्नानादि काल, से पड़ी हुई यह टेव अब एकदम कैसे छोड़ी जा सकती है ? ॥९॥

जेह तजे ते धन्य छै, सेवक जिनजी ना लो । अहो सेवक० ।
हमे जड़ पुद्गल रस रम्या, मोहेयललीना लो । अहो मोहे० १०

भावार्थ—जो कोई श्री जिनेश्वर देव का भक्त व्यक्ति इन भोगों को ठुकराता है, उसे वार-वार धन्य है । हम सब तो मोहाशक्त होकर उन पुद्गलों के रगरस में रमने वाली हैं ॥१०॥

अध्यातम रस पान थी, भीना मुनिरायालो । अहो भीना० ।
ते पर परिणितरति तजी, निज तच्चे समाया लो । अहो निज० ११

भावार्थ—अध्यात्म रस के पान से जिनका अंतर भीग गया है, ऐसे त्यागी मुनि पुद्गल परिणति को छोड़कर आत्मतत्त्व में समाये हुये रहते हैं ॥११॥

अमने पिण करवो घटे, कारण संयोगे लो । अहोकारण० ।
पण चेतनता परिणमे-जड़ पुद्गल नाभोगे लो । अहोजड़० ॥१२॥

भावार्थ—हमें भी यही उचित है कि ऐसे निमित्त का संयोग मिलने पर त्यागमा' का आश्रय लें। परन्तु अभी तो चेतन पुद्गलों के भोगों में फँसा हुआ है। ॥१२॥

अवर कन्या पण उच्चरे, चिंतित हिवे कीजे लो। अहोचिं०।

पछी परम पद साधवा, उद्यम साधीजे लो। अहो उद्यम०। १३

भावार्थ—इसी बीच दूसरी कन्याओं ने भी प्रभंजना से कहा, अभी तो जिस इच्छित काम के लिये हम जारही हैं, वही कर लीजिये। उचित अवसर आने पर परमपद साधने का उद्यम करेंगी। ॥१३॥

प्रभंजना कहै हे सखि, ए कायर प्राणी लो। अहो ए कायर०।

धर्म प्रथम करवो सदा, देवचन्द्रनी वाणी लो। अहो देवचन्द्र०। १४

भावार्थ—पूर्ण संवेग रग में रंगी हुई प्रभंजना ने कहा, कि हे सखि ! यह तो कायरों का काम है जो भोगों को भोग कर पीछे त्याग करने की सोचता है। मानव को सबसे पहले धर्म करना चाहिये क्योंकि मृत्यु का कोई ठिकाना नहीं है। यह वाणी श्री- देवचन्द्र जी महाराज की है ॥१४॥

:—:

ढाल २—दुसरी

हं वारी घन्ना तुज्जक जाण न देस" ए देशी

कहै साहुणी सुण कन्यका रे धन्या। ए संसार कलेश।

एहने जे हित करी गिणे रे। धन्या। ते मिथ्या आवेश रे।

सुज्ञानी कन्या ! सांभल हित उपदेश । जग हितकारी जिनेशरे
सुज्ञानी०! कीजे तसु आदेश रे । सुज्ञानी०। ए आंकडी । १ ।

भावार्थ—राजकुमारी प्रभञ्जना की बड़ती हुईसंवेगधारा को सुदृढ़ बनाने के लिये साध्वीजी बोलो कन्याओं । यह संसार ही क्लेशमय है । भोग विलासमय जीवन को जो कोइ अपनाता है; वह उसका आवेश (विचार) मिथ्या है मृग मरीचिका मात्र है समझदार बालिकाओं ! हित का उपदेश सुनो और जगत का हित करने वाले श्रीजिनेश्वर देव के उपदेश का पालन करो.....१.....

खरडी ने जे धोयवुरे, कन्या तेह न श्रेष्ठाचार ।

रत्नत्रयी साधन करो रे । कन्या । मोहाधीनता वार रे सुज्ञानी २

भावार्थ—अभी आपकी सहेलियों ने जो मुक्त भोगी बनकर त्यागी बनने की बात कही थी, वह अनुचित है । जैसे अपने आपको जानबूझ कर कीचड़ में फंसाना, और फिर बाहर निकल कर शरीर वस्त्र आदि को धोने का प्रयास करना, यह श्रेष्ठ पुरुषों का आचार नहीं है । वैसे ही अपनी आत्मा को पहले तो विषय वासना रूपी कीचड़ में फंसाकर फिर उसे त्याग रूपी जल द्वारा शुद्ध बनाने की कोशिश करना ठीक नहीं है । उत्तम पुरुष का काम तो यह है कि पहले से ही विषय वासना से अपनी आत्मा को मलिन न होने दे । अतः मोह की आधीनता छोड़कर रत्नत्रयी अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य की आराधना में लग जाइये ।

जे पुरुष वरवा तणी रे । कन्या । इच्छै छैते जीव ।

श्ये संबंध पणे भणो रे । कन्या । धारी काल सदीव । सु ३ ॥

भावार्थ—हे बाला जिस किसी पुरुष को वरने की इच्छा है, वह जन्मान्तर के कौन से संबंध से मिला है । यह जीव तो एक बार नहीं अनादि काल से इस संसार

में अनेक वार अन्य जीवों से सम्बंध स्थापित कर अपना जन्म मरण रूप संसार बढ़ाया है। इस पर जरा विचार करके देखिये ॥३॥

तब प्रभंजना चितवे रे । अप्पा । तूं छे अनादि अनंत ।
ते पण मुज सत्ता समो रे । अप्पा । सहज अकृत सुमहंत । सु०४

भावाथ-साध्वीजी के इस वक्तव्य के बाद प्रभंजना सोचने लगी हे आत्मा ! तूं तो अनादि अनंत है, सहज है, अकृत्रिम है; तथा निजी गुणों से महान है। अब जिस को मैं वरने के लिये चली हूं। वह भी उपरोक्त गुण वाला आत्मा ही तो है। फिर मुझे इस वैवाहिक संबंध की लालसा क्यों हो रही है ॥४॥

भव भमतां सवि जीव थी रे । अप्पा । पाम्या सवि संबंध ।
माता, पिता, भ्राता, सुता रे । अप्पा । पुत्रवधू प्रतिबंध सु।५ ।

भावाथ-संसार में जन्ममरण रूप अमण करते हुये इस जीव ने अनेक जीवों के साथ में सारे संबंध स्थापित कर लिये। अर्थात् यह जीव माता, पिता, भाई, पुत्र, वधू, पुत्रवधू आदिब न चुका है ॥५॥

इयो संबंध कहूं इहां रे । अप्पा । शत्रु मित्र पिण थाय ।
मित्र शत्रुता वलि लहेरे । अप्पा । इम संसार स्वभाव । सु॥६॥

भावाथ—इन संबंधों के विषय में क्या कहूं ? जो शत्रु है वही मित्र बन जाता है तथा आज जो मित्र है स्वार्थ सिद्ध नहीं होने से वही शत्रु बन जाता है संसार का ऐसा ही स्वभाव है ॥६॥

सत्ता सम सवि जीव छै रे । अप्पा । जोतां वस्तु स्वभाव ।
ए मांहरो ए पारुको रे । अप्पा । सवि आरोपित भाव । सु॥७॥

भावार्थ—वस्तु स्वभाव को देखते हुये सारे जीव सत्ता की दृष्टि से एक समान हैं। वह मेरा और यह पराया, यह सब आरोपित अर्थात् कल्पित भाव है ॥७॥

गुरुणी आगल एहवुं रे। अप्पा। जुठं केम कहवाय।
स्व पर विवेचन कीजतां रे अप्पा। मांहरों कोई न थाय।सु॥८॥

भावार्थ—निज का और पर का विवेचन करने पर यह निश्चित है कि इस आत्मा और आत्मधर्म के सिवाय मेरा कोई नहीं है। फिर गुरुणी जी के सम्मुख झूठ कैसे बोला जाय, कि इस दुनिया में दूसरा भी कोई मेरा है ॥८॥

भोगपणों पण मूल थी रे। अप्पा। माने पुद्गल खंध।
हूं भोगी निज भाव नो रे। अप्पा। पर थी नहीं प्रतिबंधासु॥९॥

भावार्थ—वैवाहिक संबंध के अंदर भोगीपन का जो भाव है वह भी पुद्गलों का स्कंध (समूह) है अर्थात् पुद्गलों का भोगी पुद्गल ही है। मैं तो अपने आत्म स्वभाव का भोगी हूं। पुद्गलों से अथवा दूसरों से मेरा कोई सम्बंध (कावट) नहीं है ॥९॥

सम्यक् ध्याने वहेचतां रे। अप्पा। हूं अमूर्त्त चिद्रूप।
कर्त्ता भोक्ता तच्च नो रे। अप्पा। अक्षय अक्रिय अनूप रे-सु॥१०॥

भावार्थ—पुद्गल को और आत्मा को सम्यग् ध्यान पूर्वक भेद-ज्ञान द्वारा अलग-छांटा जाये तो मैं अमूर्त्त और ज्ञान स्वरूप हूं। आत्म स्वभाव का ही कर्त्ता और अनुपम सुख का भोक्ता हूं। तथा अक्षय और अक्रिय हूं। ॥१०॥

सर्व विभाव थकी जुदो रे । अप्पा । निश्चय निज अनुभूति ।
पूर्णानन्दी परिणमे रे । अप्पा । नहि पर परिणति रीति ।सु।११।

भावार्थ—आत्मा को जो अपने स्वरूप का अनुभव होता है, वह सर्व विभावों से निश्चित ही पृथक् है । ऐसा विकल्प रहित निर्विकल्प पूर्णानन्द का रसास्वादन करने वाला परमात्मा फिर विभाव में कभी परिरमण नहीं करता । जैसे अमृत का स्वाद लेने वाला जहर नहीं चखता ॥११॥

सिद्ध समो ए संग्रहे रे । अप्पा । पर रंगे पलटाय ।
संयोगी भावे करी रे । अप्पा । अशुद्ध विभाव अपाय ।सु १२।

भावार्थ—संग्रह नय की दृष्टि से आत्मा सिद्ध परमात्मा के समान है । किन्तु विभाव का रंग चढ़ जाने से आत्मा विकृत हो गया यानि कर्म पुद्गल के संयोग के कारण आत्मा अशुद्ध तथा विभाव दोषवाला कहा जाता है ॥१२॥

शुद्ध निश्चय नये करी रे । अप्पा । आत्म भाव अनंत ।
तेह अशुद्ध नये करी रे । अप्पा । दुष्ट विभाव महंत ।सु।१३।

भवार्थ—शुद्ध और निश्चय दृष्टि से तो आत्मा के शुद्ध भाव अनंत हैं । अर्थात् अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत सुख आदि आत्म स्वरूप है । वहां आत्मा अशुद्ध नय की दृष्टि से अनेक दुष्ट विभावों अर्थात् विकारोंवाला भी कहा जाता है १३॥

द्रव्य कर्म कर्त्ता थयो रे । अप्पा । नय अशुद्ध व्यवहार ।
तेह निवारो स्वपदे रे । अप्पा । रमता शुद्ध व्यवहार सु ।१४।

भावार्थ—आत्मा को द्रव्य कर्म का कर्त्ता 'अशुद्ध व्यवहार नय' की दृष्टि

से कहा जाता है । पर में कर्त्तापन निवारण करके स्वपदे अर्थात् स्वभाव में रमण करने से शुद्ध व्यवहार नय कहलायेगा ॥ १४ ॥

**व्यवहारे समरे थके रे । अप्पा । समरे निश्चय तिवार
प्रवृत्ति समारे विकल्प ने रे । अप्पा । तेथी परिणति सार । सु।१५।**

भावार्थ—समता रूप आचरण से आत्मा अवश्य शुद्ध होता है । उस शुद्ध नय की प्रवृत्ति से आत्मा के विकल्प समाते हैं । विकल्पों की समाप्ति से आत्मतत्त्व की परिणति अर्थात् निविकल्प दशा प्राप्त होती है ॥ १५ ॥

**पुद्गल ने पर जीव थी रे । अप्पा । कीधो भेद विज्ञान ।
बाधकता दूरे टली रे । अप्पा । हवे कुण रोके ध्यान । सु।१६।**

भावार्थ—अतः आत्मा को भेद विज्ञान के द्वारा ऐसा सम्यग् ज्ञान हो जाने से कि मेरी आत्मा पुद्गल शरीरादि एवं अन्य जीवों से पृथक हैं, सभी बाधक परिणाम नाश हो गये, अतः अब आत्मा के शुद्ध स्वरूप के ध्यान को कौन रोक सकता था ॥ १६ ॥

आलंबन भावन वसे रे । अप्पा । धरम ध्यान । प्रगटाय ।

देवचन्द्र पद साधवा रे । अप्पा । एहिज शुद्ध उपाय । सु।१७।

भावार्थ—ये आत्मन् ! आत्मसिद्धि साधने के लिये यही शुद्ध उपाय है कि भावना का आलम्बन लेकर के धर्म ध्यान प्रगट किया जाय । ऐसा श्री देवचन्द्र जी महाराज कहते हैं ॥ १७ ॥



ढल ३ तीसरी

'तूठे तूठे रे ढुज साहेब जग नो तूठे' ए देशी

आयो आयो रे अनुभव आतमचो आयो ।

शुद्ध निमित्त आलंबन भजतां आत्मालंबन पायो रे । अनुभव १ ।

भावार्थ— बढ़ती हुई संवेगधारा से उसी समय महासती प्रभंजना को अपने शुद्ध आत्मस्वरूप का साक्षात्कार-अनुभूति हुई । सद्उपदेश रूप शुद्ध निमित्त का आलम्बन कर ध्यान करने से उन्हें अपने शुद्ध आत्म-स्वरूप में रमणता रूप अवलम्बन मिल गया ॥ १ ॥

आतमक्षेत्री गुण परजाय विधि, तिहां उपयोग रमायो ।

पर परिणति पर री ते जाणी, तास विकल्प गमायो रे । अनु २ ।

भावार्थ—अन्तरात्मा में (जीवके आठ रूचक प्रदेशों) सत्ता में रहे हुए केवलज्ञान गुण और पर्याय-अवस्थाओं में अपने उपयोग को रमाया, साथ ही विभाव रूप उपयोग को अपने आत्म स्वभाव से भिन्न जान कर तत्सम्बन्धी संकल्प-विकल्प को हमेशा के लिये त्याग दिया ॥ २ ॥

पृथक्त्व वितर्क शुक्ल आरोही, गुण गुणी एक समायो ।

परजय द्रव्य वितर्क एकता, दुर्द्धर मोह खपायो रे । अनुभव ३ ।

भावार्थ—शुक्ल ध्यान के चार भेद हैं । १—पृथक्त्व-वितर्क-विचार २—एकत्व-वितर्क-अविचार, ३—सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति, और ४—समुच्छिन्न

क्रिया । पहले भेद में एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ का वितन करना अर्थसंक्रान्ति है । एक व्यञ्जन (अक्षर) से दूसरे व्यञ्जन का विचार करना व्यञ्जन संक्रान्ति है । एक योग से दूसरे योग में गमन करना योग संक्रान्ति है । पृथक् अर्थात् अलग-अलग, वितर्क अर्थात् श्रुत, विचार अर्थात् संक्रमण यह शाब्दिक अर्थ है । घ्याता जिस प्रकार संक्रमण करता है उसी प्रकार वापिस लौट आता है प्रथम शुक्ल ध्यान द्वाराबाल ब्रह्मचारिणी प्रभंजना का चित्त निर्मल एवं शान्त हो जाने से वे दूसरे शुक्ल ध्यान को घ्याने की अधिकारणी हो गईं । एकत्व-वितर्क-अविचार' अर्थात् यह ध्यान पृथक्त्व रहित विचार रहित और वितर्क सहित है । इस ध्यान से गुण और गुणी का भेद मिटा कर गुण-गुणी में समा गया । परजय अर्थात् सर्व विकल्पों पर विजय प्राप्त करके अपने चिर शत्रु दुर्द्धर मोह को खपा दिया ॥ ३ ॥

अनन्तानुबन्धी सुभट ने काढी, दर्शन मोह गमायो ।

तिरि-गति हेतु प्रकृति खय करी, थयो आतमरस रायो रोअनु४।

द्वितीय तृतीय चोकड़ी खपावी, वेद युगल खय थायो ।

हास्यादिक सत्ता थी ध्वंसी, उदयवेद मिटायो रे ॥ अनु ५ ॥

भावार्थ—अब इस मोह कर्म को खपाने का क्रमानुसारी वर्णन करते हैं । सबसे पहले अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ को तथा दर्शन मोहनीय अर्थात् सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, और मिश्र मोहनीय को खपाया । फिर अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी कषाय को क्ष्पाते समय इन्हें आघा खपा करके नरकगति की आनुपूर्वी २, तिर्यञ्चगति की आनुपूर्वी ४, एकेन्द्रिय जातिनाम, वेइन्द्रिय जाति नाम, ते इन्द्रिय जाति नाम तथा चोइन्द्रिय जाति नाम ८, आतप

नाम६ उद्योत नाम१० स्थावर नाम११ सूक्ष्म नाम१२ साधारण नाम१३ निद्रा-
निद्रा१४ प्रचला प्रचला१५ और स्त्यानद्वि१६ इन सोलह कर्म प्रकृतियों को खपाते
हैं । फिर अधबीच में छोड़ी हुई कषाय अर्थात् द्वितीय तृतीय चौकड़ी (अप्रत्या
ख्यानी चतुष्क और प्रत्याख्यानी चतुष्क का नाश किया है । उसके बाद युगल
वेद अर्थात् अपने चालू वेद को छोड़ कर शेष दो वेदों को खपा कर हास्य-रति-
अरति-भय-शोक-दुगुं छा की सता को मिटा करके अपने वेद (अर्थात् स्त्रीवेद)
को खपाया) ॥ ४-५ ॥

थइ अवेदी ने अविकारी, हण्यो संजलनो कषायो।

मार्यो मोह चरण खायक करी, पूरण समता समायो रे ।अ०६।

भावार्थ-तत्पश्चात् अवेदी और अविकारी होकर के संज्वलन क्रोधमान माया
छोभ खपा करके चारित्र-मोहनीय कर्म को सर्वथा खपादिया । अर्थात् यथाख्यात
चारित्र को पालिया । इससे पूरण समता में समा गई ॥६ ॥

घनघाती त्रिक योद्धा लडिया, ध्यान एकत्व ने ध्यायो।

ज्ञानावरणादिक भट पडिया, जीत निशान घुरायो रे । अनु७ ।

भावार्थ—अब क्षीण मोहनीय के अंतिम दो समयों में से पहले समय में
निद्रा प्रचला को खपाकरके अंतिम समय में एकता रूपी ध्यान से तीन घन घाती
अर्थात् ज्ञानावरणोय, दर्शनावरणोय तथा अंतराय कर्म रूपी योद्धाओं को मार कर
जीत का निशान घुरा दिया ॥७॥

केवल ज्ञान दरसन गुण प्रगट्या, महाराज पद पायो ।

शेष अघाती कर्मक्षीण दल, उदय अबंध दिखायो रे । अनु ८ ।

भावार्थ—तत्पश्चात् केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रगट होने से वीतराग

महाराज का पद पालिया । बाकी रहे हुए जो अत्रातो कर्म हैं, उनका उदय रहते हुये भी अबंधकाल है । अर्थात् मोहनोय कर्म के नाश होने के पश्चात् कर्मों का बंध नहीं पडता । यद्यपि केवलियों के ईर्यापथिक कर्म का बंध बतलाया है, परंतु पहले समय में बंध और दूसरे समय में निर्जरा होने से उसे अबंध ही कहा है ॥८॥

सयोगी केवली थया प्रभंजना, लोकालोक जणायो ।

तीन काल नी त्रिविध वर्चाना, एक समे ओलखायो रे ।अनु६ ।

भावार्थ—कुमारी प्रभंजना अब सयोगी केवली बन गई । जिससे लोक और अलोक का समग्र स्वरूप प्रत्यक्ष हो गया । तीनकाल अर्थात् अतीत अनागत और वर्तमान की तीन प्रकार की प्रवृत्ति अर्थात् उत्पाद व्यय और ध्रौव्य को एक ही समय में ओलख लिया । ऐसा कोई भाव अवशिष्ट नहीं रहा जो केवलज्ञानोपयोग से नहीं जाना गया हो ॥९॥

सर्व साधविधे वंदना कीधो, गुणी विनय उपजायो ।

देव देवी तव स्तुवे गुणस्तुति, जगजय पडह बजायो रे ।अनु१० ।

भावार्थ—पूर्व परंपरागत क्रम के अनुसार देवों ने जब प्रभंजना केवली को साधुवेष दे दिया तब सारी साध्वियों ने उन्हें वंदना की । यद्यपि ये साध्वियाँ दीक्षा पर्याय की दृष्टि से बड़ी थी परंतु केवली का पद साधुपद से बड़ा है अतः इन्होंने वंदना करके गुणी का विनय किया कहा जायेगा । उसी क्षण देव और देवियों ने भी केवलज्ञान का महोत्सव मनाते हुये प्रभजना केवली के गुणों की स्तवना की । यही जगत में जीत का पडह बजाया कहा जाता है ॥१०॥

सहस कन्यका दीक्षा लीधी, आश्रव सर्व तजायो ।

जग उपगारी देश विहारे, शुद्ध धर्म दीपायो रे । अनु ११ ।

भावार्थ—इस प्रकार केवलज्ञान की उत्पत्ति से प्रभावित होकर इसके साथवाली एक सहस कन्याओं ने भी सर्व आश्रव का परित्याग करके दीक्षा लेली । उसके बाद देश देशान्तरों में विहार करते हुए शुद्ध धर्म को दिपाकर जगत का उपगार किया ॥११॥

कारण जोगे कारज साधे, तेह चतुर गाइजे ।

आतम साधन निर्मल साधे, परमानंद पाइजे रे । अनु १२ ।

भावार्थ—इस तरह किसी सत्पुरुष या सत्संग का निमित्त कारण मिलने पर ज्ञे आत्मा अपना कार्य साध लेता है, वही चतुर कहा जाता है । आत्मा की निर्मलता जो साध्य है उसे आत्मिक साधनों द्वारा साध करके पूर्ण आनंद पाना चाहिये ॥१२॥

ए अधिकार कछो गुण रागे, वैरागे मन भावी ।

‘वसुदेवहिंडी’तणै अनुसारै, मुनि गुण भावना भावी रे । अ० १३ ।

भावार्थ—वैराग्य और गुणानुराग से प्रेरित होकर मैंने “वसुदेव हिंडी” के अनुसार मुनिगुणों की भावना रूप यह वर्णन कहा है । ॥१३॥

मुनिगुण थुणतां भावविशुद्धे, भवविच्छेदन थावे ।

पूर्णानन्द पद एहथी उलसै, साधन शक्ति जमावे रे । अनु १४ ।

भावार्थ—विशुद्ध भावना अन्तर रूची से मुनिगुणों की स्तुति करने से आत्मा का भव-विच्छेद होता है । तथा इससे पूर्णानन्द पद प्रगट होता है । ऐसा करनेवाला अपनी आत्मा की साधनशक्ति को मजबूत बनाता है ॥१४॥

मुनिगुण गावो भावो भावना, ध्यावो सहज समाधि।

रत्नत्रयी एकत्वे खेलो, मिटे अनादि उपाधि रे । अनु १५ ।

भावार्थ—हे भव्यो ! मुनियों के गुण गावो । शुद्ध आत्म भावना भावो । और सहज समाधि लगावो । फिर ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य रूप रत्नत्रयी की एकता में खेलो । जिससे अनादिकाल से आत्मा के साथ लगी हुई कर्मों की उपाधि मिट जाये ॥१५॥

राजसागर पाठक उपगारी, ज्ञानधरम दातारी ।

दीपचन्द्र पाठक खरतर वर, देवचन्द्र सुखकारी रे । अनु १६ ।

भावार्थ—राजसागर उपाध्याय बड़े उपगारी थे । उनके बाद ज्ञानधरम उपाध्याय ज्ञान और धर्म के बड़े दाता थे । तत्पश्चात् श्री दीपचन्द्र नामक उपाध्याय हुए । इसी सुखकारी और श्रेष्ठ खरतर गच्छ में पण्डित मुनि श्री देवचन्द्र हुए । १६ ।

नयर लींबडी मांहे रहीने, वाचंयम स्तुति गाई ।

आत्म रसिक श्रोताजन मनने, साधन रुचि उपजाई रे । अनु १७ ।

भावार्थ—सौराष्ट्र प्रदेशान्तर्गत लींबडी नगर में रहकर यह मुनि गुणों की स्तुति की । इससे आत्मतत्व के रसिक लोगों को आत्म साधन करने की रुचि उत्पन्न करवायी गयी । १७ ।

इम उत्तम-गुण-माला-गावो, पावो हरष वधाई ।

जैन धर्म मारग रुचि करतां, मंगल लील सदाई रे । अनु १८ ।

भावार्थ—इस प्रकार उत्तम पुरुषों के उत्तमोत्तम गुणों की माला रूप स्तुति गावो । जिससे तुम हर्ष और वधाई के पात्र बन सको ! जैन धर्म के मार्ग की रुचि रखने से सदा लीला और मंगल होते हैं । १८ ।

इति पंडित-श्री देवचन्द्र जी महाराज विरचित

प्रभंजना की सज्भाय समाप्त ।

श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत
साधु भावना पद ।

जगत में सदा सुखी मुनिराज ।

पर विभाव परणत के त्यागी, आगे जात्म समाज । जगत०।
निजगुण अनुभव के उपयोगी, योगी ध्यान जहाज । जगत०।१।

भावार्थ:—इस त्रासमय संसार में वास्तविक सुखी मुनिराज ही हैं । क्योंकि न उन्हें शारीरिक सुखों में ही रुची रही, न इन्द्रियों के विषय भोगों की कामना । जब कि किसी चीज की कामना ही नहीं, इच्छा ही नहीं, तो आकुलता ही कैसे रहेगी ?

आकुलता-अतृप्ति ही मनुष्य को अशान्त करती है । उसके सहज-सुखमय जीवन में बाधक है । मुनिराज ने जब इच्छाओं पर ही विजय प्राप्त कर लिया है, तब सहज सुख तो उन्हें स्वयं प्राप्त है ।

मुनिराज सांसारिक-पौद्गलिक-जड़ वस्तुओं में आसक्त नहीं हैं । उसमें वे मोह-ममता-राग या द्वेष नहीं करते, तद् विषयक संकल्प विकल्प भी नहीं करते ।

वे तो अपने मन को अन्तर्मुखी बनाकर अपने आत्म 'समाज' में ही विचरण करते हैं । सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य और सहज सुख, शान्ति ही उनका समाज है ।

इस प्रकार अन्तर्मुखी मुनिराज का केवल ज्ञानमय आत्म-प्रदीप प्रज्वलित हो जाने से, वे अपने आत्मिक गुणों का ही अवलोकन, विन्तन करते रहते हैं

उनका दर्शनोपयोग, ज्ञानोपयोग मात्र ही अपनी शक्ति है। वे अपने उपयोग को बाहर अन्य पदार्थों में नहीं लगाते, व्यर्थ नहीं गंवाते; उनसे उदासीन रहते हैं।

वे तो आत्म-ध्यान रूपी जहाज के खेवैये हैं, शुद्ध-आत्म ध्यान ही एकमात्र इस संसार रूपी भवजल से तरने का ही आलम्बन है। मुनिराज शुद्धात्म-ध्यान के योगी बन कर जन्म मरण से छुटकारा पाने के मार्ग की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

हिंसा मोस अदत्त निवारी, नहीं मैथुन के पास।

द्रव्य भाव परिग्रह के त्यागी, लीने तत्व विलास।२। जगता

भावार्थ— इस प्रकार मुनिराज ने पौद्गलिक-सुख में मोह-ममता-राग या द्वेष त्याग दिया है। उनके सम्बंध में मन के संकल्प विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प बन गये हैं। वे भाव से अहिंसक बन गये हैं। अनादिकाल से अज्ञानवश होती हुई अपनी आत्मा की हिंसा के कारणों को सम्यग् ज्ञान से जान कर शुद्धात्म ध्यान रूप सम्यक् चारित्र के द्वारा नष्ट कर रहे हैं।

मुनिराज सभी देहधारी आत्मा को अपनी आत्मा के समान जानते हैं, मानते हैं। अतः वे किसी प्रकार के देहधारी आत्मा को मन, वचन, काया से कष्ट नहीं देते, हिंसा नहीं करते। इसलिये वे परम दयालु हैं, पूर्ण अहिंसक हैं।

ऐसे उच्च कोटि के आत्म साधक असत्य-भूठ, अदत्त-चोरी से तो केशों दूर रहते हैं। ऐसे निष्पृह साधक को मैथुन-पंच इन्द्रियों की विषय वासना कैसे लुभा सकती है। ब्रह्मचर्य के तेज के सामने विषय वासना ठहर ही नहीं सकती।

जो महापुरुष अपने शरीर को इमसान की होने वाली राख मानते हैं, हीरे, मानिक को पत्थर का टुकड़ा जानते हैं, वे उन्हें अपनायेंगे, यह असम्भव है। आत्म-साधक मुनिराज इन सब से परे रहकर अपने अन्तरात्मा में विराजमान केवल ज्ञानस्वभाव की अवस्थाओं के विलास में तल्लीन रहते हैं।

निर्भय निर्मल चित्त निराकुल, विलगे ध्यान अभ्यास ।
देहादिक ममता सवि वारी, विचरे सदा उदास । जगत० १३।

भावार्थ—मुनिराज सप्तमयों पर विजय प्राप्त कर निर्भय हो गये हैं । शुद्धात्म स्वरूप का ध्यान करते रहने से जिनका मन निर्मल हो गया है । कामनाओं-इच्छाओं पर विजय प्राप्त करने से निराकुल बन गये अब मुनिराज मन-वचन, काया को स्थिर करके अपने शुद्धात्म स्वरूप के चिन्तन में, ध्यान के अभ्यास में सदा तल्लीन रहते हैं । अब शरीर में ममता न रहने से शारीरिक-सुख सन्मान आदि की इच्छा नहीं रही । अतः इनसे वे हमेशा उदासीन रहते हैं ।

ग्रहे आहार वृत्ति पात्रादिक, संयम साधन काज ।
देवचन्द्र आणानुजाई, निज सम्पति महाराज । जगत० ४।

भावार्थ—बचे हुए आयुष्य में शरीर धारण के लिये, आत्म साधन रूप संयम पालने के लिये आहार लेना आवश्यक है । और निर्दोष आहार लाने के लिये बस्त्र पात्र आवश्यक हो जाते हैं । सद्गुरु देवचन्द्रजी फर्माते हैं कि वीतराग सर्वज्ञ भगवान के आज्ञानुसार जो मुनि आत्म कल्याण रूप संयम की आराधना करते हैं, वे महान साधक अपने केवलज्ञानादि अनुपम सम्पति के स्वामी बनकर जगतपूज्य बन जाते हैं ।

—

साधु भावना सज्जाय

:—:

साधक साधज्यो रे निज सत्ता इक चित्त ।

निज गुण प्रगट पणे जे परिणमें रे, एहिज आतम वित्त ।१।

भावार्थ—हे साधक ! (जिन आज्ञानुसार चलनेवाले मुनिराज) अन्तर में रहे हुए अपने अव्यक्त शुद्धात्म स्वरूप की ध्यान द्वारा एकाग्र मन से साधिये । साधते-साधते जब अपना केवलज्ञान प्रगट होगा, वही परमात्मा का सहज स्वभाव है ॥ १ ॥

पर्याय अनंता निज कारण पर्णे रे, वरते ते गुण शुद्ध ।

पर्याय गुण परिणामें कर्तृ तारे, ते निज धर्म प्रसिद्ध ।२।

भावार्थ—अपने सहज ज्ञान में परिरमण को पर्याय कहते हैं । अनन्त ज्ञान की समय-समय में होनेवाली अनन्त पर्यायों-अवस्थाओं में परिरमण करनेवाले परमात्मा का केवलज्ञानादि गुण विशुद्ध है । ऐसे विशुद्ध गुणों में वर्तन रूप परिणामों का कर्ता परमात्मा है, फलस्वरूप परमानन्द का भोक्ता भी । जिन प्रवचन में आत्मा के दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य वीर्य रूप गुण धर्म नाम से प्रसिद्ध हैं ।

परभावानुगत वीरज चेतनारे, तेह वक्रता चाल ।

करता भोक्तादिक सवि शक्ति मां रे, व्याप्यो उलटो ख्याल ।३।

भावार्थ—किन्तु अनादिकाल से जीव अज्ञानवश अपने शरीरादि के सुख-की लालसा में पड़ा हुआ अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहा है ! यही उसकी विषय परिणति है, यही टेढ़ी चाल है । पुद्गल जड़ से उत्पन्न शरीरादि

का जीव खुद कर्ता बन कर उसके सुख दुख का भोक्ता बनता है। इस प्रकार जीव पर मैं अहं और मम की बुद्धि करता आ रहा है। ऐसे विपरीत बुद्धि के कारण ही वह उल्टे रास्ते चलता है, संसार में जन्म मरण रूप भ्रमण करता है ॥ ३ ॥

क्षयोपशमिक ऋजू ताने ऊपने रे, तेहिज शक्ति अनेक ।

निज स्वभाव अनुगतता अनुसरे रे, आर्यव भाव विवेका४।

भावार्थ—संसार में भ्रमण करते-करते जीव को जब क्षयोपशमिक लब्धि विशेष आत्मिक शक्ति प्रगट होती है, जिससे उसके लम्बी-लम्बी स्थितिवाले सातों कर्मों की अवधि एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम से भी कम रह जाती है तब जीवके भावों की शुद्धि होती है, जिससे सरल-सहज भाव उत्पन्न होते हैं, उस सहज भाव की अनेक शक्तियाँ हैं जैसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य्यं। जिससे आत्म स्वभाव के अनुकूल आचरण होता है, और उसे सहज-सरल मोक्ष मार्ग का विवेक-ज्ञान हो जाता है।

अपवादें परवंचकतादिका रे, ए माया परिणाम ।

उत्सर्गे निज गुणनी वंचना रे, परभावे विश्राम ।५।

भावार्थ—विशेष कथन है कि यदि जीव लोभवश माया-प्रपंच कर दूसरों को ठगता है तो सामान्यतया वह अपने ही सहज गुणों को प्रगट नहीं होने देता, उनसे वंचित रहता है, तथा आर्त, एवं रोद्र ध्यान में व्यस्त रहता है।

साते वरजी अपवादे आर्जवी रे, न करे कपट कषाय ।

आत्म गुण निज निज मति फोरवेरे, ए उत्सर्ग अमाय ।६

भावार्थ—आत्म दर्शन में बाधक सातों दर्शनमोहनीय कर्मों को तीन करण

के द्वारा क्षय करके जब विशेष रूप से सरल-सहज स्वभावी बन जाता है, तब, वह कपट-कषाय नहीं करता है। अपने आत्म गुण सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य कीर्त्य को अपने-अपने कार्य में प्रेरित कर मोक्षमार्ग-उत्सर्ग मार्ग साधते हैं।

सत्तारोध भ्रमण गति चारमें रे, पर आधीने वृत्ति ।

वक्रचाल थी आतम दुःख लहे रे, जिम नृप नीति विरत्त ।७।

भावार्थ-ऐसा नहीं करने वाला जीव पोद्गलिक-विषय वासनाओं में आसक्त मनोवृत्ति वाला होता है तथा अपने सत्ता में रहे हुए अन्तरात्मा को अष्ट कर्म रूपी बादलों से ढँका रखता है, फल स्वर्ण चार गति में भ्रमण करता रहता है। अपनी इस प्रकार की टेढ़ी विरती चाल से जोव अनादिकाल से संसार भ्रमण करता हुआ दुख पाता है। जैसे कि राजा अन्याय एवं अनीति कर दुख पाता है

ते माटें मुनि ऋजुतायें रमेरे, वमे अनादि उपाधि ।

समता रंगी संगी तच्चना रे, साधे आत्म समाधि ॥ ८ ॥

भावार्थ-इसलिये साधक मुनि अपने अनादिकाल के मिथ्या-दृष्टिपन (वक्रता) को त्याग चुके हैं, तथा सम्यग्दृष्टिपन (सरलता) में स्थित है। वे वक्र-चाल-अविरती को छोड़कर, मुनि-सर्वविरती बनकर विचर रहे हैं। अब पर में ममता न रहने से मन में समता का ऐसा रंग चढ़गया है कि वे अपने सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य रूप निज तत्व में एक रस होकर अपने साध्य-विशुद्ध आत्म स्वरूप में समाधिस्थ रहने की साधना कर रहे हैं।

मायाक्षयें आर्जवनी पूर्णतारे, सवि गुण ऋजुतावंत ।

पूर्व प्रयोगें परसंगी पणोरे, नहीं त सु कर्तावंत्त ॥ ९ ॥

भावार्थ-माया मिथ्यात्व नष्ट हो जाने पर, जीव अविरति-वक्रचाल छोड़

देता है जिससे उसकी सरलता पूर्ण रूप से समताभाव रूप आत्मशक्ति विकसित होती हैं, समता भाव में सभी आत्मिक गुण सभाये हुए हैं ही। अब जो बाकी के कर्मों का तथा शरीरादिका जो पर संगीपन जीव के बच रहा है वह पहले के संचित कर्मों के प्रभाव से है, लेकिन जीव अब उनका कर्ता भोक्ता नहीं रहा।

साधनभाव प्रथम थी नीपजरे, तेहोज थाये सिद्ध।

द्रव्यत साधन विघन निवारणा रे, नैमित्तिक सुप्रसिद्ध ॥१०॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि होने के बाद आत्मा के जो साधनभाव-समताभाव उत्पन्न होता है, उसे ही साधने-साधते जब वह सिद्ध हो जाता है तब आत्मा ही परमात्मा बन जाता है। पंच महाव्रतादि द्रव्य साधन तो आत्म-साधन मार्ग में आनेवाले अनुकूल एवं प्रतिकूल उपसर्गों से बचाने में ढाल का काम करते हैं। लड़ाई में अपने बचाव के उपयोगी वस्तु की आवश्यकता है ही। जो कि निमित्त कारण नाम से जिन वाणी में प्रसिद्ध है ॥ १० ॥

भावे साधन जे इक चित्तथीरे, भाव साधन निज भाव।

भाव सिद्ध सामग्री हेतु ते रे, निस्संगी मुनिराय ॥ ११ ॥

भावार्थ—समताभाव को जो मन, वच, काया की स्थिरता-एकाग्रता-पूर्वक एक समरसी होकर साधते हैं, वही भावसाधन है, आत्मा का शुद्ध स्वभाव है। विशुद्ध आत्मस्वरूप परमात्मस्वरूप की सिद्धि के लिये निस्संग निर्विकार निर्विकल्प निरंजन, निराकारभाव साधक मुनि के लिये उपादेय है ॥ ११ ॥

हेय त्याग थी ग्रहण स्वधर्म नो रे, करे भोगवे साध।

स्वस्वभाव रसिया ते अनुभवे रे, निज सुत्र अन्याबाध ॥१२॥

भावार्थ—परसंग त्याग, रागद्वेष विकार त्याग कर समताभाव सहित जो अपने विशुद्ध आत्मस्वरूप केवल ज्ञान स्वभाव का एकाग्र चित्त से ध्यान करता है, अनुभव करता है वह केवल अपने स्वभाव सुख का रसिया हैं वही अपने विघ्न बाधा रहित परमानन्द स्वरूप का अपने सिद्ध-बुद्ध स्वरूप का अनुभव करता है ॥ १२ ॥

निःस्पृह निर्भय, निर्मम निर्मला रे, करता निज साम्राज ।

देवचन्द्र आणायें विचरतारे, नमिये ते मुनिराय ॥ १३ ॥

भावार्थ—समता भाव की साधना करते हुए जो साधक मुनि स्पृहा रहित भय रहित, ममतारहित होकर निर्मल स्वभावी बन गये हैं वे अपने केवलज्ञानादि साम्राज्य को प्रगट करने में तत्पर है

श्रीमद् देवचन्द्रजी फरमाते हैं कि ऐसे उत्तम साधक मुनिराजों को जो जिनाज्ञानुसार विचर रहे हैं उन्हें बारम्बार सविनय वंदना [करें] ॥ १३ ॥

—:—

साधु समस्या द्वादश दोषक

- पर गुण से न्यारे रहै, निज गुण के आधीन ।
चक्रवर्त्ति ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । १।
इह निज इह पर वस्तु की, जिने परीख्या कीन ।
चक्रवर्त्ति ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । २।
जिणहुँ निज निज ज्ञान सँ, ग्रहे परिख तत्व लीन ।
चक्रवर्त्ति ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ३।
दस विध धरम धरइ सदा, शुद्ध ज्ञान परी कीन ।
चक्रवर्त्ति ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ४।
समता सागर में सदा, भील रहे ज्युं मीन ।
चक्रवर्त्ति ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ५।
आशा न धरै काहू की, न कबहूँ पराधीन ।
चक्रवर्त्ति ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ६।
तप संयम पावस वसै, दहै प्रमाद दुख भीन ।
चक्रवर्त्ति ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ७।
पुद्गल जीव की शक्ति सब, जात सप्त भय हीन ।
चक्रवर्त्ति ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ८।
सप्तम गुणथानक रहै, कीयो मोह मसकीन ।

चक्रवर्ति से अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।६।
 क्षयकोपशम पयड़ी चढै, आतम रस सुधीन ।
 चक्रवर्ति ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।१०।
 तूर्य ध्यान ध्यावत समै, कीयै करम सब छीन ।
 चक्रवर्ति ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।११।
 देवचन्द्र वावै सदा, यह मुनिवर गुन बीन ।
 चक्रवर्ति ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।१२।

इति प्राकृत भाषायासमस्या दोषक द्वादस कृता पं० देवचन्द्रेण

पद संग्रह

(१) पंचेन्द्रिय विषय त्याग-पद

चेतन छोड़ दे, विषयन को परसंग ।
 गिरोइ फिरत विलोल फरस वश, बंधोइ फिरत मातंग ।१चे०।
 कंठ छिदायो मीन आपनो, रसना के परसंग ।
 नेत्र विषय कर दीप शिखा पै, जल जल मरत पतंग ।२चे०।
 षटपद जलज मांहे फंस मूरख, खोयो अपनो अंग ।
 वीणा शब्द सुण श्रवण ततखिन, मोही मर्यो रे कुरंग ।३चे०।
 एक एक इन्द्रिय चलत बहु दुख, पायो है सरभंग ।
 पाँचों इन्द्रिय चलत महादुख, भाषत १ देवचन्द चंग ।४चे०।

१ इम भाषत देवचन्द

(१)

मेरे जिउ क्या मन मइ तूं चिंतइ ।

इक आवत इक जात निरंतर, इण संसार अनन्तइ ।१। मेरे जिउ०
करम कठोर करे जिउ भारी, पर त्रिया धन निरखंतइ ।

जनम मरण दुख देखे बहुले, चउ गइ मांहि भभंते ।२। मे०
काम भोग क्रीड़ा मन करता, जे बांधत हरषंते ।

बेर बेर तेहिज भोगवता, नवि छूटे विलवंतइ ।३। मे०
क्रोध कपट माया मद झूलइ, भूरि मिथ्याति भभंतइ ।

कहैं देवचन्द सदा सुखदाई, जिन धूम एक एकंतइ ।४। मे०

(३)

मेरे प्रीउ क्युं न आप विचारौ ।

कइसै हो कइसे गुणधारक, क्या तुम लागत प्यारो । १ टेक ।

तजि कुसंग कुलटा ममता कौ, मानौ वयण हमारो ।

जो कछु भूठ कहूं इनमें तौ, मोकूं सूंस तुम्हारो ।२। मे०

यह कुनार जगत की चेरी, याकौ संग निवारौ ।

निरमल रूप अनूप अवाधित, आतम गुण संभारो ।३। मे०

मेटि अज्ञान क्रोध दसम गुण, द्वादस गुण भी टारो ।

अक्षय अवाध अनंत अनार्श्रित; राजविमल पद सारो ।४। मे०

(४)

राग—मारू

पीयु मोरा हो सांभलि प्रीयु मोरा हो ।

निज अनुभव घर में बसौ, ए मानि निहोरा हो । १। सां०
 मिथ्यामत दूरै हरौ, करौ ज्ञान सजोरा हो ।
 पर त्रिय की मति लाग कै, क्यूं भूलत बौरा हो । २। सां०
 समता कहै साहिब अम्हे, सेवक नित तोरा हो ।
 ए कुलटा आइ आई बूढ़ा, सो तो कहो भोरा हो । ३। सां०
 राचि रहे इन संगत सुं ज्युं, शशि चित्त चकोरा हो ।
 मुंह मीठी दिल री धीठी, ए अनुभव की चोरा हो । ४। सां०
 देवचन्द्र अरु सुमति मिले जब, भागे भ्रम सोरा हो ।
 तब निज गुण इक बल्लभ लागत, अवर न लाख करोरा हो । ५। सां०

[दिरागाजी खान भंडार जयपुर, बनारसीविलास गुटके से]

(५)

आतम भाव रमो हो चेतन ! आतम भाव रमो ।
 पर भावे रमता हो चेतन ! काल अनंत गमो हो चे०।१।
 रागादिक सुं मलीने चेतन ! पुद्गल संग भमो ।
 चउगति मांहे गमन करंतां, निज आतम ने दमो हो चे०।२।
 ज्ञानादिक गुण रंग धरी ने, कर्म को संग वमो ।
 आतम अनुभव ध्यान धरंतां, शिवरमणी सुं रमो हो चे०।३।
 परमातम नु ध्यान करंतां, भव स्थिति मां न भमो ।
 देवचन्द्र परमातम साहिब, स्वामी करी ने नमो हो चे०।४।

जलन डडखे कृत कडरुनडु, एहवडु छे वुडवसडडडु रे, धन० ॢ
 डूरवडव धन लुडडथी, कीधु कूर अडडडु रे,
 तीवरसें जे डडंधीडडड, तेहनडु डल दुःखडडडु रे, धन० ॣ
 नृड अडडडु डडडडु, हल खेडवड अडडडडु रे,
 डडस एक नलज खेडरुनी, खेडवडी धरी डुडरु रे, धन० ॥०
 डडड डरुनीनु सरुवने, तुडुहे कीधु अंतुरडडु रे,
 तीवरसें जे डडंधीडु, तसु वलडडक ए अडडु रे, धन० ॥१
 डुनलवर अडडडुगुह अडडरुडु, एह करडु खडुडु कीधु रे,
 लेशुडु हवे अडडडरुने, धीरज कररुज सीधु रे, धन० ॥२
 डडस गडड डडड इणलडरे, डण डुनल सडडतड लीनु रे,
 अणडडडु अतल नलरुडरु, जडणे तलणु नवल डीनु रे, धन० ॥३
 वडसुडेव जलन वंडीने, डूछे धरी अडनंडु रे,
 सडडडक सडधु डें डलरडडलु, कवण कहु जलनडनुडु रे, धन० ॥ॣ
 नेडल कहे ढंढण डुनल, संवर नलरुडरु धरुडी रे,
 सहु सडधु थकुरी अडडक छे, सडडतड शुडुध वलहरुडी रे, धन० ॥॥
 नलजधर अडवतड नरडडतल, डंधु डुनल शडकंडु रे,
 डीठु तड इक गृहडडतल, डडडुडु हरख अडनंडु रे, धन० ॥०
 डुनल अडडडडु तसु अणणु, डडडलडडडु डनु रडगुडे,

ढुदक सूङतल ढुनल ऒही, ऒढते ढन वैरलगे रे. धन० १७
 ऒन वंदीने ढूछलडु, ऒूढुडु ते अंतरलडु रे,
 नलथ कहे ऒदुनलथ ने, कलरणथी तुढुहे ढलडु रे. धन० १ॢ
 सलंढली ढुनल अतल हरखीडल, धन धन ए ऒुरुरलङु रे,
 वीतरलग उढगलरलडल, कृढल करी ढुङ अलङु रे. धन० १ॢ
 सलधुड अधूरे कुंण करे, ए अलहलर असलरु रे,
 ढुदूगल ऒगनी एंठ ए, कलढलुडे ढुनल सुवलऒलरु रे. धन० २०
 सलधन वधते अलदरे, ए सलधक वुडवलरु रे,
 नलऒकलरण ढरवसुतु ने, छीढे नहीं अणगलरु रे. धन० २१
 इढ ऒलतवी शुदुध थंडलले, ढरठवतु ते ढलंडु रे,
 ढुदूगल संगनी नलंदनल, नलऒगुण रढण ढरऒणुडु रे. धन० २२
 ढर ढरलणतल वलऒुछेदतलं, नलऒ ढरलणतल ढुरलङुढलवु रे,
 कुषढकथ्रेणल धुडलने रढुडल, ढलढुडु अलतुढ सुवढलवु रे. धन० २३
 अलतढततुव एकलऒुरतल, तनुढड वीरऒ धलरे रे,
 धन धलती सवल खेरवुडल, रतुतुरडु वलसुतलरे रे. धन० २ॢ
 कुषीणढुहु करी ऒरणनी, कुषलडुकतल करी ढूरी रे,
 केवलऒुङुनल दरुशन वरुडलं, अंतरलडु सवल ऒूरी रे. धन० २ॣ
 ढरढ दलन ललढ नीढनु, कीधु कलरऒ सुधु रे,
 सढवसरण ढें अलवीडल, सलधुड संपूरण सीधु रे. न० २ॢ
 एहवल ढुनल ने गलइडे, धुडलइडे धरी अलणंदु रे,
 देवऒलंद ढद ढलइडे, लहलडे ढरढलनंदु रे. धन० २ॣ

॥श्री समकितनी सज्झाय॥

समकित नवि लह्योरे, ए तो रुह्यो चतुर्गति मांहे,
त्रस थावर की करुणा कीनी, जीव न एक विराध्यो,
तीन काल सामायिक करतां, शुद्ध उपयोग न साध्यो. स० १
जूठ बोलवाको ब्रत लीनो, चोरी को पण त्यागी,
व्यवहारादिक महा निपुण भयो, पण अंतरदृष्टि न जागी. स० २
उर्ध्व बाहु करी उंधो लटके, भस्म लगाइ धूम घटके,
जटा जूटे शिर मुंडे जूठो, विण श्रद्धा भव भटके. स० ३
निज परनारी त्यागज करके, ब्रह्मचारी ब्रत लीनो,
स्वर्गादिक याको फल पामी, निज कारज नवि सिध्यो. स० ४
बाह्य क्रिया सब त्यागि परिग्रह, द्रव्य लिंग धरि लीनो,
देवचंद कहे या विध तो हम, बहुत वार कर लीनो. स० ५

गजसुकुमाल मुनीश्वर सज्झाय

॥ ढाल (१) ॥ आस फली मेरी आस भली ॥ ए देशी ॥

द्वारिका नगरी ऋद्धि समृद्ध, कृष्णनरेश्वर भुवन प्रसिद्ध,

चेतन सांभलो. (ए टेक)

वसुदेव देवकी अंग सुजात, गजसुकुमालकुमर विख्यात. चे० १

नयरी परिसरें श्रीजिनराय, समवसर्या निरमम निर्माय,

यादव कुल अवतंस मुर्णिद, नेमिनाथ केवल गुण वृंद. चे० २

त्रिभुवनपति श्री नेमजिणंद, आव्या सुणी हरख्या गोविंद,
 सजी सांमईयो वंदन काज, हरखें वांध्या श्री जिनराज. चे० ३
 लघु वर्ये पण श्री गजसुकुमाल, रूप मनोहर लील विशाल,
 वीतराग वंदण अतिरंग, सुविवेकी आवे उछरंग. चेतन० ४
 समवसरण देखी विकसंत, त्रिकरणजोगें अति हरखंत,
 धन धन माने निज मनमांहि, गयो पाप हूँ थयो सनाह. चे० ५
 कुमरे वंदी जिनवर पाय, आनंद लहरी अंग न माय,
 निःकामी प्रभु दीठा जांम, विसरी वामा ने धन धाम. चे० ६
 जिन मुख अमृत वयण सुणंत, भाग्यो मिथ्या मोह अनंत,
 दरशन नाण चरण सुखखाण, शुद्धातम निजतत्व पिछाण. चे० ७
 परपरिणत संयोगी भाव, सर्व विभाव न सुद्ध स्वभाव,
 द्रव्यकर्म नौकर्म उपाधि, बंधहेतु पमुहा सवि व्याधि. चे० ८
 तेहथी भिन्न अमूरति रूप, चिन्मय चेतन निज गुण रूप,
 श्रद्धा भासन थिरता भाव, करतां प्रकटे शुद्ध स्वभाव. चे० ९
 नेमि वचन जाग्यो वडवीर, धीर वचन भाषे गंभीर,
 देहादिक ए मुजगुण नांहि, तो किम रहेवुँ मुजए मांहि. चे० १०
 जेहथी बंधाये निजतत्व, तेहथी संग करे कुण सत्व,
 प्रभुजी रहेवुँ करि सुपसाय, हुं आवुं माता समजाय. चे० ११

॥ ढाल (२) ॥ वहिलडा आवज्यो ॥ ए देशी ॥

माता जी नेमि देशन सुणो, मुज थयो आज आणंद रे,
मनुज भव आज सफलो थयो, आज शुभ उदय आणंद रे. मा० १२
देवको चित्त अति गहगही, इम कहे मधुर मुख वाणि रे,
धन्य तु धन्य मति ताहरी, जेणे सुणी नेमि मुख वाणि रे. मा० १३
माताजी एह संसारमां, सुखतणो नहीं लवलेश रे,
वस्तुगत भाव अवलोकतां, सर्व संसार कलेश रे. मा० १४
कर्मथी जन्म, तनु कर्मथी, कर्म ए सुख दुःख मूल रे,
आतम धर्म नविए कदा, आज मुज टली सवि भूल रे. मा० १५
नेमि चरणे रहि आदरुं, चरण गुण शिवसुखकंद रे:
विषय विष हिवें मुज नवि रुचे, सांभले अमृतानंद रे. मा० १६
माताजी अनुमति आपीये, हवें मुज एम न रहाय रे,
एक खिण अविरत दोषनी, वातडी वचन न कहायरे मा० १७
मोहवशें मुंभी देवकी, विलवती इम कहे वात रे,
पुत्र तें ए किश्युं भाखियुं, तुज विरह मुज न सुहात रे. मा० १८
वत्स ! संयम अति दोहिलुं, तोलवो मेरु एक हाथ रे,
प्राण जीवन मुज वालहो, माहरे तुंहिज आय रे. मा० १९
मात तुंमे एक श्राविका नेमिनी, तुमें एम न कहाय रे,
मोक्ष सुख हेतु संयमतणो, किम करो मात अंतराय रे. मा० २०

वत्स ! मन भाव दुकर घणो, जीपवो मोह भूपाल रे,
 विषय सेना सहु वारवी, तमे छो बाल सुकुमाल रे, मा० २१
 मातजी निज घर आंगणै बालक रमे निरबीह रे,
 तेम मुज आतम धर्म में, रमण करतां किसी बीह रे मा० २२
 मोह विष सहित जे वचनडा, ते हिवें मुज न छिबंत रे,
 परम गुरु अमृत वचनथकी, हुँ थयो उपशमवंत रे, मा० २३
 भवतणो कंद हवें भाजवो, साधवो मोह अरिबृंद रे,
 आतमानंद आराधवो, साधवो मोक्ष सुखकंद रे, मा० २४
 नेमथी कोई अधिको होवे (तौ) मानिये तास वचन्न रे,
 माताजी काई नचि भाखिये, माहरे संयमें मन्न रे, मा० २५

॥ढाल (३) ॥ धन धन साधु शिरोमणि ढंडगौ ॥

धन धन जे मुनिवर ध्याने रम्या रे, समतासागर उपशमवंत रे
 विषय कषायें जे नडिया नहीं रे, साधकपरमारथ सुमहंतरे धन०
 जादवपति परिवारे परिवर्यो रे, नेमि चरणे पुहुंता गजसुकुमाल रे
 मात पिता भ्रातें बहिराविया रे, नंदन बाल मनोहर चाल रे, ध०
 प्रभुमुख सर्वविरति अंगीकरी रे, मुकी सरव अनादि उपाधिरे
 पूछे स्वामी कहौ केम नीपजे रे, मुज ने बहेली सिद्धिसमाधिरे, ध०
 प्रभु भाखे निज तत्व एकाग्रता रे, उदय अन्यापकता परिणाम रे

संवरवाधे साधे निर्जरा रे, लघुकालें लहिये शिवधाम रे।

धन धन जे० २६

एगराई पडिमा तुमे आदरो रे, धरजो आतम भाव सुधीर रे
समतासिन्धु मुनिवरें तिम कर्यो रे, शिवपद साधन वडवीर रे।

धन धन जे ०३०

शिर उपर सिगडी सोमिलें करीरे, समता शीतल गजसुकुमाल रे,
क्षमा नीरें न्हवराव्यो आतमारे, श्युं दाझे तेहनै ए भाल- रे।

धन धन जे० ३१

दहनधर्म ते दाह जे अगनिथी रे, हुं तौ परम अदाज अगाह रे;
जे दाझे तेतौ माहरौ धन नथी रे, अक्षय चिन्मय तत्व प्रवाह
रे, धन धन जे० ३२

क्षपकश्रेणि ध्यान आरोहणें रे, पुद्गल आतम भिन्न स्वभाव रे
निजगुण अनुभव वली एकाग्रता रे, भजतां कीधौ कर्म अभाव
रे, धन धन जे० ३३

निरमल ध्याने तत्व अभेदता रे, निर्विकल्प ध्याने तदरूप रे
पातकक्षयें निजगुण उल्लस्यां रे, निर्मल केवलज्ञान अनूप रे।

धन धन जे० ३४

थई अजोगी शैलेसी करी रे, टाल्यौ सर्व संजोगी भाव रे,
आतम आतम रूपें परिणम्या रे, प्रगट्यौ पूरण वस्तुस्वभाव रे।

धन धन जे० ३५

सहज अकृत्रिम वली असंगता रे निरुपचरित वली निर्द्वन्द रे

निरुपम अन्यावाध सुखी थया रे, श्री गजसुकुमाल मुनींद रे,
 धन धन जे० ३६
 नित्यप्रति एहवा मुनि संभारीये रे, धरीये एहनुं मनमांहींज
 ध्यान रे
 इच्छा कीजे ए मुनिभावनी रे, ज्युं लहीये अनुभव परमनिधान
 रे, धन धन जे० ३७
 खरतर गच्छ पाठक दीपचन्दनों रे, देवचन्द्र वंदे ए मुनिराय रे
 सकल सिद्ध सुखकारण साधुजी रे, भव भव होज्यो सुगुरु
 सहाय रे, धनधन जे ३८

इति श्री गजसुकुमाल सज्भाय समाप्त

ध्यानी निर्यथ सज्भाय

दोहा

परमारथ निश्चय करी, वधते मन वैराग ।
 इन्द्रिय सुख निस्पृह थका, साधु इसा बड़भाग ॥ १
 भाव शुद्धि भव भ्रमण थी, छूटा जो जोगीश ।
 काम भोग थी ऊभग्या, तन नी स्पृहा न रोश ॥ २
 प्राण त्याग पण ध्यानथी, छूटे नहीं लगार ।
 पर त्यागी मुनिवर तिके, ध्यान तणा आधार ॥ ३
 महा-परिषह साप थी, जन निंदा थी जास ।
 क्षोभ न पामें मन तनक, वसता निज गुण वास ॥ ४
 राग द्वेष राक्षस थकी, भय नवि पामे जेह ।

नारी थी मन नवि चले, अक्षय निज रस गेह ॥ ५
 तप दीपक नी ज्योति थी, बाल्या कर्म पतंग ।
 ज्ञान राज्य त्रय लोक नो, विलसे जेह निःसंग ॥
 तप थी तन ने पीड़वे, उपशम रस भंडार ।
 लोक सर्व सुखकार जे, मोह अग्नि जलधार ॥ ७
 निज स्वभाव आनन्दमय, शांत सुधारस ठाम ।
 योग महागज जीप ने, व्रतधारी शम धाम ॥ ८

ढाल—तार मुक्त तार संसार सागर थकी

महा शमधार सुखकार मुनिराय जे, ध्यान ध्यावा भणी जोग थावे;
 देह आधार संसार सुख निस्पृही, तेह जोगीश निज देव पावे; म० १
 शुद्ध विज्ञान रस पान थी शांत मन, थावर जंगम दया धारी;
 मेरू जेम अचल आकाश जेम निर्मला, पवन जेम संग विण लोभ वारी; म० २
 भव्य सारंग सुखकार उपदेश थी, देह शोभा तजी मोक्ष साधे;
 ज्ञान शक्ति करी आत्म निज ओलखे, शुद्ध निज ध्यान ते मुनि आराधे; म० ३
 अेम निज देह नै मोक्ष गृह चढण ने, कही सोपान सम साधु सेवा;
 ध्यान ते साधु ने मोक्ष कारण कह्यो, विमल विख्यात निज गुण वहेवा; म० ४
 दांत मन विहग इंद्रिय भणी जे दमे, ज्ञान ना गेह पातक विडारे;
 कर्म दल गंज ने चित्त निर्मल थका, एम जोगीश शिव मग सुधारे; म० ५
 गिरि नगर कंदरा गेह शय्या शिला, चंद्र कर दीप मृग संग चारी;
 ज्ञान जल तप अदीन शांत आत्मा थका, धन्य निबन्ध सुविहित विहारी; म० ६

प्राण इन्द्रिय बली देह संवर करी, रोकी संकल्प मन मोह भंजी;
 धन्य निज ध्यान आनन्द आलम्ब धरी, शुद्ध पद आत्मनी ज्योति रंजी; म० ७
 हेय आदेय त्रिभुवन गणे साधु जे, क्षय करे पुण्य ने पाप केरो;
 आत्म आनन्द स्याद्वाद थी विषय ने, विषय गणी भंजता कर्म घेरो, म० ८
 कार्य संसार ना साधता ज्ञान विण, जगत में एहवा बहुत दीसे;
 कापी भव दुख बली ज्ञान जल भीलता, एहवा साध दौय तीन दीसे; म० ९
 बड़े प्रासाद में नरम पत्यंक पर, रात जे पोढता नारी संगे;
 तेह गिरि कंदरा कठिन शिला परे, रहे नित जागता ध्यान रंगे; म० १०
 चित्त थिर राग ने द्वेष नौ क्षय करी, जीप इन्द्रिय आरंभ छोड़ी;
 ज्ञान उद्दीपना थकी आनंदमय, देखो निज देव ने कर्म मोड़ी; म० ११
 छोड़ी परसंग आत्मा-भणी सिद्ध सम, ध्यावता सुमति सुं मोह वारे;
 आत्म स्वभावगत जगत सहु अन्य गणी, ज्ञान निधि मोक्ष लक्ष्मी सुधारे; म० १२
 तत्व चिंता करे विषय ने परिहरे, स्वहित निज-ज्ञान आनंद दरीयो;
 सुमति संयुक्त तप ध्यान संयम सहित, एहवो साध चारित्र भरीयो; म० १३
 एहवा पंडितो वचन रचना थकी, नित थुणै आत्म ने बहुत ऐसा;
 बुद्ध अनुभूति आनंद सुं राचीगा, कटे भव पास दुरलंभ तैसा; म० १४
 एहवा योग धारी जिके मुनिवरु; ध्यान निश्चल ते केईज राखे;
 ध्यान ने योग अणयोग नी ए कथा, ग्रंथ अनुसार देवचन्द्र भाखे; म० १५

—:—

श्री अभय जैन ग्रन्थमाला के महत्वपूर्ण प्रकाशन

१ ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह	...	५१
२ बीकानेर जैन लेख संग्रह	...	१०१
३ दादा जिनकुशलसूरि
४ युग प्रधान श्री जिनदत्तसूरि	...	११
५ समय सुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि	...	५१
६ ज्ञानसार ग्रन्थावली	...	२१५०

सादूल राजस्थान रिसर्च इन्स्टीट्यूट के प्रकाशन

१ विनय चन्द्र कृति कुसुमाञ्जलि	...	४१
२ पद्मिनी चरित्र चौपाई	...	४१
३ धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली	...	५१
४ सीताराम चउपई (समय सुन्दर)	...	४१
५ समय सुन्दर रास पञ्चक	...	३१
६ जिन राजसूरि कृति कुसुमाञ्जलि	...	४१
७ जिन हर्ष ग्रन्थावली	...	५१

श्रीमद् देवचन्द्र ग्रन्थावली

१ चौबीसी बोसी स्तवन	...	१२५
२ अष्ट प्रवचन माता सज्जाय सार्थ	...	१५०
३ पंच भावनादि सज्जाय सार्थ	...	१०५
४ शान्त सुधारस

उपाश्रय कमेटी प्रकाशन

राई देवसी प्रतिक्रमण	...	१३१
पूजा संग्रह	...	२१५०

Serving JinShasan



102891

gyanmandir@kobatirth.org

ब्रदर्स

मल्लिक लेन

१-७

श्री हरि प्रसाद उपाध्याय द्वारा प्रभाकर प्रेस ७४ पथरियाघाट स्ट्रीट कलकत्ता-६ से मुद्रित